अनुवाद—"एक तरफ बैठे आयुष्मान् भृगु से भगवान् ने पूछा—"कहो भिक्षु! सब कुछ कुशल से तो चल रहा है? सब कुछ सुखपूर्वक तो बीत रहा है? भिक्षा मिलने में कोई कठिनाई तो नहीं होती?" भृगु उत्तर देते हैं—"हाँ भन्ते! सब कुछ कुशलपूर्वक, सुखपूर्वक बीत रहा है, यापन हो रहा है, भिक्षा में कोई कठिनाई नहीं होती।"

इस संवाद से स्पष्ट होता है कि खमनीय (क्षमणीय) का अर्थ है 'कुशलमय स्थिति' तथा 'यापनीय' का अर्थ है 'सुखमय स्थिति' या 'जीवनयोग्य स्थिति' अर्थात् अनुकूल या निर्बाध स्थिति।

श्वेताम्बरागम **ज्ञाताधर्मकथांग** (अध्ययन ५-शैलक / पृ. १७४-१७५) में भी शुक परिव्राजक ओर थावच्चापुत्र अनगार के बीच ऐसा ही संवाद होता है। शुक थावच्चापुत्र से पूछता है—

"जत्ता ते भंते? जवणिज्जं ते? अव्वाबाहं पि ते? फासुयं विहारं ते?"

अनुवाद—"भगवन्! आपकी यात्रा चल रही है? आपका यापनीय भी है? आपका अव्याबाध भी है? और आपका प्रासुक विहार भी हो रहा है?"

थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—**"सुया! जत्ता वि मे, जवणिज्जं पि मे, अव्वाबाहं पि मे, फासुयविहारं पि मे।"**

अनुवाद—"हे शुक! मेरी यात्रा भी हो रही है, यापनीय भी वर्त रहा है, अव्याबाध भी है और प्रासुक विहार भी हो रहा है।"

शुक थावच्चापुत्र से प्रश्न करता है—**"से किं तं भंते! जवणिज्जे?"**

अनुवाद—"भगवन्! आपका यापनीय क्या है?"

थावच्चापुत्र कहते हैं—**"सुया! जवणिज्जे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा — इंदियजवणिज्जे य नोइंदियजवणिज्जे य।"**

अनुवाद—"शुक! यापनीय दो प्रकार का है—इन्द्रिययापनीय और नोइन्द्रिययापनीय।"

शुक पूछता है—**"से किं तं इंदियजवणिज्जे?"**

अनुवाद—"इन्द्रिययापनीय क्या है?"

थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—**"जं णं मम सोइंदिय चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदियफासिंदियाइं निरुवहयाइं वसे वट्टति, से तं इंदियजवणिज्जं।"**

अनुवाद—"शुक! मेरी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय बिना किसी उपद्रव के वशीभूत रहती हैं, यही मेरा इन्द्रिययापनीय है।"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शुक पूछता है—"**से किं तं नोइंदियजवणिज्जे?**"

अनुवाद—"नोइन्द्रिययापनीय क्या है?"

थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—"**सुया! जन्नं कोह-माण-माया-लोभा खीणा, उवसंता, नो उदयंति, से तं नोइंदियजवणिज्जे।**"

अनुवाद—"हे शुक! मेरे क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय क्षीण हो गये हों, उपशान्त हो गये हों, उदय में न आ रहे हों, यही मेरा नोइन्द्रिययापनीय कहलाता है।"

इस संवाद में 'इन्द्रिययापनीय' का अर्थ यह बतलाया गया है कि मेरी इन्द्रियाँ बिना किसी उपद्रव के वशीभूत रहती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि **जीवन के कार्यों के निर्बाध सम्पन्न होने को 'यापनीय' कहते हैं।** यह तभी संभव है जब कार्य स्वशक्त्यनुरूप हों।

व्याकरण के अनुसार विचार करने पर यापनीय शब्द इसी प्रकार के अर्थ का वाचक सिद्ध होता है। '**याप्**' '**या**' धातु का प्रेरणार्थक रूप है। मोनियर विलियम्स-संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी के अनुसार इसका अर्थ किसी को जाने के लिए प्रेरित करने तथा चिकित्सा करने के अतिरिक्त किसी कार्य को शक्य, सरल और सुविधामय बनाना भी है। अतः इसमें परिस्थिति (देश-काल) के अनुसार परिवर्तन करना अर्थ भी गर्भित है। '**अनीयर्**' **प्रत्यय के योग से 'यापनीय' शब्द बनता है। तब इसका अर्थ होता है शक्य या व्यवहार्य।** श्री हरिभद्रसूरि ने भी आवश्यकसूत्र की टीका में पृ.४६-४७ पर '**यापनीयया यथाशक्तियुक्तया नैषेधिक्या प्राणातिपात-निवृत्तया तन्वा शरीरेणेत्यर्थः** (यापनीय अर्थात् यथाशक्तियुक्त शरीर द्वारा नैषेधिकी अर्थात् प्राणातिपात-निवृत्ति से) इस व्याख्या से **यापनीय** शब्द का 'स्वशक्त्यनुरूप' या 'शक्य' अर्थ ही प्ररूपित किया है। यतः '**स्वशक्त्यनुरूप प्रवृत्ति' का वाचक 'यापनीय'** शब्द श्वेताम्बर-साहित्य में ही मिलता है, दिगम्बरसाहित्य में नहीं, इससे सिद्ध है कि यापनीयों ने अपने लिए 'यापनीय' नाम श्वेताम्बरसाहित्य से ही ग्रहण किया है। यह भाषागत ऐक्य इस बात का प्रमाण है कि श्वेताम्बरसंघ ही यापनीयों का मूल है।

इस प्रकार अपने सम्प्रदाय का 'यापनीय' नामकरण कर यापनीयों ने यह ध्वनित किया है कि उनके द्वारा प्रतिपादित मोक्षमार्ग यापनीय है अर्थात् सबके लिए शक्य या व्यवहार्य है। उसमें व्यक्ति एवं देश-काल के अनुसार सुविधामय नियम अपनाये जा सकते हैं। इस तरह 'यापनीय' शब्द के व्याकरणसिद्ध अर्थ से भी यह संकेत मिलता है कि सवस्त्रमुक्ति मानते हुए भी यापनीयों ने जो नग्नत्वरूप द्रव्यलिंग अपनाया था, उसका उद्देश्य लोकमान्यता और राजमान्यता प्राप्त कर अपने

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मुनिजीवन को शक्य और सुख-सुविधामय बनाना था। इस प्रकार श्वेताम्बर साधुओं ने ही यापनीयसंघ की नींव डाली थी।

८

बोटिक शिवभूति के गुरु श्वेताम्बर

बोटिककथा में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि शिवभूति के गुरु आर्यकृष्ण स्थविरकल्पी साधु अर्थात् निरपवाद-सचेलमार्गी श्वेताम्बरसाधु थे। शिवभूति उनसे स्थविरकल्प की अर्थात् श्वेताम्बरी दीक्षा ग्रहण करता है, किन्तु कुछ समय बाद जिनकल्प धारण करने पर तुल जाता है। तब गुरु उसे समझाते हैं कि जिनकल्प का व्युच्छेद हो चुका है, अब किसी में भी उसके आचरण की क्षमता नहीं है। किन्तु शिवभूति गुरु के उपदेश की अवहेलना कर नग्न साधु बन जाता है।

बोटिककथा के इस तथ्य को मुनि कल्याणविजय जी, आचार्य हस्तीमल जी, पं० दलसुखभाई मालवणिया, डॉ० सागरमल जी आदि सभी श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों ने स्वीकार किया है। अतः जो मुनि एवं विद्वान् यह मानते हैं कि बोटिक शिवभूति ने यापनीयमत चलाया था, उनकी मान्यतानुसार भी यह सिद्ध होता है कि यापनीयमत का प्रवर्तक श्वेताम्बर साधु था, अतः श्वेताम्बरमत से ही यापनीयमत की उत्पत्ति हुई थी।

९

उत्पत्तिस्थान : दक्षिण भारत

डॉ. सागरमल जी का यह कथन भी समीचीन नहीं है कि यापनीय-सम्प्रदाय का जन्म दक्षिण में न होकर उत्तर में हुआ था, क्योंकि यह मत भी बोटिकों को यापनीय मान लेने की भ्रान्ति से प्रसूत है। जब यह सिद्ध किया जा चुका है उत्तरभारतीय बोटिक यापनीय नहीं थे, तब यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि यापनीयों की उत्पत्ति उत्तरभारत में नहीं हुई थी। इसके अतिरिक्त हरिषेण, देवसेन और रत्ननन्दी, तीनों आचार्यों के साहित्यिक साक्ष्य कह रहे हैं कि यापनीय-सम्प्रदाय का जन्म दक्षिणभारत में हुआ था, तो इसके विरुद्ध प्रमाण मिले बिना इसे अप्रामाणिक कैसे माना जा सकता है?

शिलालेखीय प्रमाणों से भी यही सिद्ध होता है। जैन शिलालेख संग्रह (मा.चं.) के तृतीय भाग की प्रस्तावना में यापनीयसंघ का परिचय देते हुए डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ने कहा है कि "यह संघ दक्षिण भारत की अपनी देन है।" (पृ.२५)। यापनीयसंघ का उल्लेख करनेवाले जितने भी शिलालेख हैं, वे सब दक्षिणभारत में ही उपलब्ध हुए हैं, यह तथ्य यापनीयसंघ की दक्षिणभारत में उत्पत्ति का प्रबल प्रमाण है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आदरणीय **डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये** ने यापनीयों से सम्बन्धित अभिलेखों का विस्तृत सर्वेक्षण किया है। उन्हें सारे अभिलेख दक्षिणभारत में ही उपलब्ध हुए हैं। उनका विवरण उन्होंने अपने शोधालेख **'जैन सम्प्रदाय के यापनीयसंघ पर कुछ और प्रकाश'** में दिया है, जिसका हिन्दी अनुवाद **'अनेकान्त' के महावीर-निर्वाण-विशेषांक** (वी० नि० सं० २५०१, सन् १९७५) में प्रकाशित हुआ था। उसका प्रमुख अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

"कदम्बवंशीय मृगेशवर्मन् (४७५-४९० ई०) ने यापनीय, निर्ग्रंथ और कूर्चकों को अनुदान दिया था, इनके गुरु का नाम दामकीर्ति उल्लिखित है। आगे मृगेशवर्मन् के पुत्र (४९७-५३७ ई०) ने भी कुछ ग्राम अनुदान में दिए थे जिनकी आमदनी से पूजा-प्रतिष्ठा के अनुष्ठान किए जाते थे और यापनीय साधुओं के चार माह का भरण-पोषण किया जाता था। इसमें जिन गुरुओं के नामोल्लेख हैं, वे हैं : दामकीर्ति, जयकीर्ति, बन्धुसेन और कुमारदत्त। संभवतः ये चारों ही यापनीय हों। आगे कृष्णवर्मन् के पुत्र देववर्मन् (४७५-४८० ई०) ने यापनीयसंघ को एक ग्राम दान किया था, जिससे मन्दिर की सुरक्षा और दैनिक देखभाल हो सके।[९] (पृ.२४७)।

"८१२ ई० के कदम्ब-दानपत्र में निम्न विवरण प्राप्त होता है-'राष्ट्रकूट राजा प्रभूतवर्ष ने कुछी (ली) आचार्य के शिष्य अर्ककीर्ति द्वारा संचालित मंदिर को स्वयं दान दिया था, जो यापनीय-नन्दिसंघ, पुन्नागवृक्ष-मूलगण के श्रीकीर्ति आचार्य के उत्तराधिकारी थे (बीच में कई आचार्यों को छोड़कर) अर्ककीर्ति ने कुनुन्गिल देश के शासक (गवर्नर) विमलादित्य का उपचार किया था, जो शनिग्रह के दुष्प्रभाव से पीड़ित था।[१०] नौवीं ई० के किरइप्पाक्कम (चिंगलपेट, तमिलनाडु) लेख से देशवल्लभ नामक एक जैनमंदिर का पता चलता है, जो यापनीयसंघ और कुमिलगण के महावीर गुरु के शिष्य अमलमुदल गुरु द्वारा निर्मित कराया गया था।[११] और अनुदानपत्र में यापनीयसंघ के साधुओं के भरण-पोषण की भी व्यवस्था का उल्लेख है। (पृ.२४७)।

"पूर्वी चालुक्यवंश के अम्म द्वितीय ने जैनमंदिर के लिए मलियपुण्डी (आन्ध्र) ग्राम का अनुदान दिया था। इस मंदिर के अधिकारी यापनीयसंघ (कोटि) मडुवगण और पुन्यारुह (संभवतः पुन्नागवृक्षगण जैसा ही) नंदीगच्छ के जिननंदी के प्रशिष्य और दिवाकर के शिष्य श्रीमंदिरदेव थे।[१२] ९८० ई० का सौदत्ति (सुगंधवर्त्ति) का शिलालेख

---

९. I.A. VI, pp. 24-27, VII, pp. 33-5.

१०. E.C.XII Gubbi 61.

११. A.R.S.I.E. 1954-35, N. 22 p. 10 Delhi 1938.

१२. E.I.IX No. 6.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भी है, जो चालुक्यवंश के तैलपदेव से प्रारम्भ होता है। इसमें शांतिवर्म और उनकी रानी चन्द कब्बी का भी विशेष उल्लेख है। शांतिवर्म ने जो जैनमंदिर बनवाया था, उसके लिए उन्होंने भूमिदान किया था। इसमें कुछ साधुओं के नाम दिए हैं, जो यापनीयसंघ-कण्डूरगण के थे। इनके नाम हैं बाहुबलिदेव (भट्टारक), (जिनकी उपमा चंद्र, सिंह आदि से की है), रविचन्द्र स्वामी, अर्हनन्दी, शुभचंद्र, सिद्धान्तदेव, मौनिदेव और प्रभाचंद्रदेव आदि।[१३] डॉ० पी० बी० देसाई ने होसुर (सौदत्ति, जिला बेलगाँव) के एक दूसरे लेख का विवरण दिया है, जिसमें यापनीयसंघ के कण्डूरगण के उपदेशकों (साधुओं, गुरुओं) का उल्लेख है, जिनके नाम हैं शुभचंद्र प्रथम, चन्द्रकीर्ति, शुभचंद्र द्वितीय, नेमिचन्द्र, कुमारकीर्ति, प्रभाचन्द्र और नेमिचन्द्र द्वितीय।[१४]

"पता चला है कि बेलगाँव की दोड्ड वसदि में भ० नेमिनाथ की प्रतिमा है जो किसी समय किले के मन्दिर में थी। इसमें जो पीठिका-लेख है, उससे पता चलता है कि यापनीय-संघ के पारिसय्य ने १०१३ ई० में इस मन्दिर का निर्माण कराया था, जिसे साहणाधिपति (संभवतः कदम्बशासक जयकेशी के दण्डनायक) की माता कत्तय्य और जक्कव्वे ने कल्लहविळ (गोकम के पास) ग्राम की भूमि दान में दी थी। उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि पारिसय्य साधु या गुरु नहीं थे, अपितु कोई सामान्यजन थे, जिनके यापनीयसंघ से घनिष्ठ संबंध रहे होंगे, इसीलिए उनका विशेषतया उल्लेख किया गया है।[१५] १०२० ई० के रढवग्-लेख में स्पष्ट लिखा है कि हूविनवागे की भूमि का दान दण्डनायक दासिमरस ने विख्यात यापनीयसंघ-पुन्नागवृक्षमूलगण के प्रसिद्ध उपदेशक (आचार्य) कुमारकीर्ति पंडितदेव को किया था।[१६] १०२८-२९ ई० के होसुर (धारवाड) लेख में लिखा है कि पोसवूर के आच्छ-गवुण्ड ने सुपारी के बाग एवं कुछ घर वसदि (मन्दिर) को दान में दिए थे। यहाँ यापनीयसंघ (पुन्नागवृक्षमूल पूरा नहीं पढ़ा जाता) के गुरु जयकीर्ति का स्पष्ट उल्लेख है।[१७] हूलि का विवरण दो भागों में उपलब्ध है, प्रथम, चालुक्यवंशी आहवमल्ल सोमेश्वर (१०४४ ई०) का, दूसरा, जगदेवमल्ल के लिए तथा इनसे संबंधित साधुओं के लिए अनुदान की व्यवस्था है। हूलि के प्रथम विवरण में यापनीयसंघ-पुन्नागवृक्षमूल के बालचन्द्र भट्टारकदेव का उल्लेख है तथा दूसरे में रामचन्द्रदेव का विशेष उल्लेख है।[१८] १०४५

---

१३. Journal of the B.B.A.A.S.X 71-72, teut pp. 206-7.

१४. Jainism in South India p.165.

१५. जिनविजय (कन्नड) जनवरी १९३१।

१६. Journal of the Bombay Historical Society iii pp. 102-200.

१७. S.I.I. XII, No. 65, Madras 1940.

१८. E.I.XVIII, Also P.B. Desai, Ibidem pp. 174F.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ई० के मुगद लेख में भी यापनीय संघ और कुमुदिगण का संदर्भ मिलता है। यह एक पत्र है, जिसमें बड़े अच्छे स्पष्टीकरण और साधुओं के नामोल्लेख भी हैं, जैसे श्रीकीर्ति गोरवडि, प्रभाशशांक, नयवृत्तिनाथ, एकवीर, महावीर, नरेन्द्रकीर्ति, नागविक्कि-वृतीन्द्र, निरवद्यकीर्ति भट्टारक, माधवेन्दु, बालचन्द्र, रामचन्द्र, मुनिचन्द्र, रविकीर्ति, कुमारकीर्ति, दामनन्दी, त्रैविद्य गोवर्धन, दामनन्दी, वड्डाचार्य आदि। यद्यपि उपर्युक्त नामों में कुछ कृत्रिम और जाली हैं, फिर भी इनमें से बहुत से साधु बड़े विख्यात और ज्ञान तथा चारित्र के क्षेत्र में अद्वितीय रूप से अत्यधिक प्रसिद्ध थे।[१९] मोरब (जिला धारवाड) विवरण में यापनीयसंघ के जयकीर्तिदेव के शिष्य नागचन्द्र के समाधिमरण का उल्लेख है, नागचन्द्र के शिष्य कनकशक्ति थे, जो मंत्रचूडामणि के नाम से प्रसिद्ध थे।[२०] त्रिभुवनमल्ल के शासन में १०९६ ई० के डोनि (जिला धारवाड) विवरण में यापनीयसंघ- वृक्षमूलगण के मुनिचन्द्र त्रैविद्य भट्टारक के शिष्य चारुकीर्ति पण्डित को उपवन-दान का उल्लेख है। इस दानपत्र को मुनिचन्द्र सिद्धान्तदेव के शिष्य दायियय्य ने लिपिबद्ध किया था।[२१] धर्मपुरी (जिला भिर, महाराष्ट्र) लेख में लिखा है—"नाना प्रकार के करों से प्राप्त आमदनी भगवान् की पूजा तथा साधुओं के भरणपोषण के लिए अनुदानरूप में पोहलकेरे के पञ्चपट्टण, कञ्चुगारस और तेलुंगनगरस द्वारा दी जावे। यह अनुदान यापनीयसंघ और वंदीयूरगण के महावीर पण्डित के सुपुर्द किया गया था, जो वसदि के आचार्य भी थे।[२२] ११वीं सदी के रामलिङ्ग-मंदिर के कलभावी-लेख में पश्चिमी गंगवंश के शिवमार का उल्लेख है। शिवमार ने कुमुदवाड नामक ग्राम जैनमंदिर को दान दिया था, जिसे स्वयं ने निर्मित कराया था, और इसे मइलायान्वय कारेयगण (जो यापनीयसंघ से सम्बन्धित है, ऐसा बइलहोंगल विवरण में लिखा है) के गुरु देवकीर्ति के सुपुर्द किया था। इनके पूर्वाचार्यों में शुभकीर्ति, जिनचन्द्र, नागचन्द्र और गुणकीर्ति आदि आचार्यों का भी उल्लेख है।[२३] (पृ.२४७-२४८)।

"११०८ ई० में बल्लालदेव और गण्डरादित्य (कोल्हापुर के शिलाहारवंशीय) के समय में मूलसंघ-पुन्नागवृक्षमूलगण की आर्यिका रात्रिमती-कन्ति की शिष्या बम्मगवुड ने मंदिर बनवाया था, जिसके लिए अनुदान का उल्लेख होन्नुर-लेख में विद्यमान है।[२४] बइलहोंगल (जिला बेलगाँव) का लेख चालुक्यवंशीय त्रिभुवनमल्लदेव के समय का

---

१९. S,I.I. XII, No. 78, Madras 1940.

२०. A.R. S.I.E. 1928-29, No. 239 p. 56.

२१. S.I.I.II, iii No. 140.

२२. A.R.S.I.E. 1961- 62 B 460-61.

२३. I.A.XVIII P. 309, Also P.B. Desai Ibidem p. 115.

२४. I.A. NII , p. 102. (जै.शि.सं. / मा.च./ भा.२ / ले.क्र.२५०)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है। इसमें रट्टवंशीय महासामन्त अङ्क, शान्तियक्क और कूण्डिप्रदेश का उल्लेख है। यह किसी जैनमंदिर को दिया गया अनुदान-पत्र है। इसमें यापनीयसंघ मइलापान्वय कारेयगण के मुलभट्टारक और जिनदेवसूरि का विशेष रूप से स्पष्ट उल्लेख है।[२५] विक्रमादित्य षष्ठ के शासनकालीन हूलि (जिला बेलगाँव) लेख में यापनीयसंघ-कण्डूरगण के बाहुबलि, शुभचन्द्र, मौनिदेव और माघनन्दी आदि का उल्लेख मिलता है।[२६] एक्साम्बि (जिला बेलगाँव) में विजयादित्य (शिलाहार गण्डरादित्य के पुत्र) के सेनापति कालन (ण) द्वारा निर्मित नेमिनाथ वसदि से प्राप्त लेख द्वारा ज्ञात होता है कि यापनीयसंघ-पुन्नागवृक्षमूलगण के महामंडलाचार्य विजयकीर्ति को मन्दिर के लिए भूमिदान किया गया था। इनकी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार मिलती है : मुनिचन्द्र, विजयकीर्ति, कुमारकीर्ति और त्रैविद्य विजयकीर्ति आदि। रट्ट कार्तिवीर्य ने ११७५ ई० में इस मन्दिर के ससम्मान दर्शन किए थे।[२७] १२वीं सदी के मध्य में लिखे गये आर्सीकेरे (मैसूर) लेख में जैनमंदिर को दिए गए अनुदान का उल्लेख मिलता है। इस लेख के प्रारंभिक छन्दों में से एक छन्द में मडुवगण यापनीय (संघ) की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है, मूर्तिप्रतिष्ठा पोन्नागवृक्षमूलगण और संघ (यापनीय) के शिष्य माणिकशेहि द्वारा कराई गई थी, प्रतिष्ठाचार्य थे कुमारकीर्ति सिद्धान्त जो यापनीयसंघ मडुवगण से सम्बन्धित थे। एक दूसरे लेख में इसके दानकर्त्ता का नाम यापनीयसंघ के सोमय्य का है। दूसरे अन्य विवरणों की भाँति इसमें भी जनसामान्य को यापनीयसंघ से सुसम्बद्ध किया है। दूसरे, इस लेख के सम्पादक का मत है कि इसमें से यापनीय शब्द को मिटा दिया गया है। तीसरे, 'काष्ठामुखप्रतिबद्ध' जैसा शब्द बाद में इसमें जोड़ा गया है, पर यह सब सर्वथा अतिशयोक्ति है। वैसे यापनीयों के विरुद्ध कुछ द्वेष तो अवश्य दर्शाया गया है, पर कोई पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि उनका काष्ठामुख की ओर झुकाव हो, क्योंकि 'काष्ठामुखप्रतिबद्ध' शब्द स्वयं बाद में जोड़ा गया है, पर यह समझ में नहीं आता कि इस असंगति को हटाने के लिए जिसने काष्ठामुख-प्रतिबद्ध शब्द जोड़ा है, उसी ने यापनीय शब्द को मिटाया हो।[२८] १२वीं सदी के लोकपुर के (जिला बेलगाँव) विवरण में लिखा है कि ब्रह्म (कल्लभावुण्ड के पुत्र) उभयसिद्धान्तचक्रवर्ती, यापनीयसंघ के कण्डूरगण के सकलेन्दु सिद्धान्तिक के शिष्य थे।[२९] तेंगलि (जिला गुलवर्ग) में १२वीं सदी की प्रतिमा है, जिसके पीठिकालेख से ज्ञात होता है कि इसकी

---

२५. A.R.S.I.E. 1951-52 , No. 33 , p. 12. (जै.शि.सं. / भा.ज्ञा. / भा.४ / ले.क्र. २०९)।

२६. E.I.XVIII , P.P. 201 F.

२७. A.R. of the Mysore Arch. Deptt. 1961, pp. 48 FF.

२८. Ed. S. Sattar : J. of the Karnatak University, X, 1965, 159 F.F. (Kannada).

२९. कन्नड शोध संस्थान, धारवार १९४२-४८, नं. ४७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रतिष्ठा यापनीयसंघ के वडिपुर (वन्दिपूर) गण के नागदेव सिद्धान्तिक के शिष्य ब्रह्मदेव ने कराई थी।[३०] १२ वीं सदी ई० के मनोलि (जिला बेलगाँव) के लेख से विदित होता है कि यापनीयसंघ के गुरु मुनिचन्द्रदेव की समाधि निर्मित कराई गई थी, जो सिरियादेवी द्वारा संस्थापित वसदि (मन्दिर) के आचार्य थे। इसी में यापनीयसंघ के मुनिचन्द्र के शिष्य पाल्यकीर्ति के समाधिमरण का भी उल्लेख है।[३१] १३वीं सदी ई० के अदरगुञ्छि (जिला धारवाड) के विवरण से यापनीयसंघ और कण्डूरगण की उच्छंगि-स्थित वसदि को दी जाने वाली भूमि की सीमाओं का लेखा-जोखा प्राप्त होता है।[३२] (पृ.२४८-२४९)।

"१३ वीं सदी के हुकेरि (जिला बेलगाँव) विवरण से जो सर्वथा अस्त-व्यस्त और कटा-फटा है, यापनीयसंघ के किसी गण (गण का नाम मिट गया है) के त्रैकीर्ति का नामोल्लेख मिलता है।[३३] (पृ. २४९)।

"कागवाड (जिला बेलगाँव) के तलघर में भ० नेमिनाथ की एक विशाल प्रतिमा है, जिसके पीठिका-लेख में धर्मकीर्ति और गाम बम्मरस के नामोल्लेख हैं, इसमें जो तिथि अंकित है, वह १३९४ ई० के समकालीन तिथि है। इस विवरण में कुछ व्यवधान भी हैं, पर यापनीयसंघ और पुन्नागवृक्षमूलगण के साधुओं में नेमिचन्द्र (जो तुष्ठुवराज्य-स्थापनाचार्य भी कहलाते थे) धर्मकीर्ति और नागचन्द्र के नाम भी उल्लेखनीय हैं।[३४] (पृ. २४९)।

"कुछ बिना तिथियों के भी विवरण उपलब्ध हैं। सिरुर (जमखंडि) विवरण से ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथ-भट्टारक की प्रतिमा कुसुम-जिनालय के लिए यापनीयसंघ और वृक्षमूलगण के कालिसेहि ने भेंट की थी।[३५] गरग (जिला धारवाड)-विवरण में यापनीयसंघ कुमुदिगण के शांतिवीरदेव के समाधिमरण का स्पष्ट उल्लेख है। एक और नष्ट हुए इसी तरह के विवरण में इसी संघ और गण का उल्लेख मिलता है।[३६] रायद्रुग-(जिला बेल्लारी)-विवरण में निसिदि के निर्माण का उल्लेख है, जिसमें आठ नाम लिखे हैं, उनमें से मूलसंघ के चन्द्रभूति तथा यापनीयसंघ के चन्द्रेन्द्र, बादय्य और तम्मण्ण के नाम स्वाभिप्रेत हैं।[३७] (पृ.२५०)।

३०. A.R.I.E. 1960-61, No. 511 also P.B. Desai Ibidem p. 404.
३१. A.R.S.I.E. 1940-41, No. 563-65, p. 245.
३२. A.R.S.I.E. 1941-2, No. 3, p. 255.
३३. A.R.S.I.E. 1941-42, No. 6 p. 261.
३४. जिनविजय (कन्नड़) बेलगाँव, जुलाई १९३१।
३५. A.R.S.I.E. 1938-39, No. 98, p. 219
३६. A.R.S.I.E. 1925-26, No. 5441-42, p. 76..
३७. A.R.S.I.E. 1919 No. 109, p. 12.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"कुछ और लेख एवं विवरण हैं, जो बहुत विलम्ब से प्रकाश में आये हैं, उनमें एक है ११२४ ई० का सेडम-लेख, जिसमें मडुवगण के प्रभाचन्द्र त्रैविद्य का उल्लेख है। संभवतः यह गण यापनीयसंघ से ही संबंधित हो।[३८] दूसरा है १२१९ ई० का बदलि (जिला बेलगाँव)-लेख जिसमें यापनीयसंघ और कारेयगण का उल्लेख है। इसमें जिन साधुओं के नामोल्लेख हैं, वे हैं माधव भट्टारक, विनयदेव, ---कीर्ति भट्टारक, कनकप्रभ और श्रीधर-त्रैविद्यदेव।[३९] तीसरे हैं १२०९ और १२५७ ई० के हन्नकेरि-लेख। इनमें यापनीयसंघ, मइलापान्वय, कारेयगण के सन्दर्भ मिलते हैं। इसमें जिन गुरुओं के नाम अंकित हैं, वे हैं कनकप्रभ (जो 'जातरूपधर-विख्यातम्,' कहलाते थे तथा अपनी निर्ग्रन्थता के लिए अतिप्रसिद्ध थे) और श्रीधर (कनकप्रभ पण्डित)।[४०] चौथा है कोल्हापुर के मंगलवार-पेठवाले मंदिर की पहली मंजिल की पीठवाला कन्नड-लेख, जिसमें लिखा है कि वोमियण्ड ने यह पाठशाला बनवाई थी, जो यापनीयसंघ-पुन्नागवृक्षमूलगण के विजयकीर्ति के शिष्य रवियण्ण का भाई था।[४१] पाँचवाँ, जिसकी प्रतिलिपि डॉ० गुरुराज भट्ट ने मुझे भेजी थी, जो वरंग (द० क०)-स्थित प्रतिमा से प्राप्त हुआ है, इसमें काणूरगण का उल्लेख है। श्रीभट्ट जी ने इस लेख का गम्भीरता से अध्ययन किया है। (पृ.२५०)।

"उपर्युक्त यापनीयसंघ से संबंधित नाना विवरणों और लेखों का (५वीं सदी से १४ वीं सदी ई० तक) तिथिक्रम से सर्वेक्षण करने पर संघ के बारे में बहुत से सुनिश्चित और विस्तृत एवं प्रामाणिक तथ्य प्रकाश में आते हैं। सर्वप्रथम तो **यापनीय-जन निर्ग्रन्थों, श्वेतपट और कूर्चकों से सर्वथा भिन्न थे।** यापनीयसंघ का गणों से विशेष सम्बन्ध था, जैसे कुमुलिगण या कुमुदिगण, (कोटि) मडुवगण, कण्डूर् या काणूरगण, पुन्नागवृक्ष-मूलगण (जो मूलसंघ से भी संबंधित है), वन्दियूरगण, कारेयगण, नन्दिगच्छ और मइलापान्वय आदि-आदि। इस तरह विभिन्नगणों से सम्बद्धता से स्पष्ट प्रतीत होता है कि संघ क्रमशः गणों के माध्यम से ही विख्यात हो सका। **गणभेद** ग्रंथ के विवरण से ज्ञात होता है कि वे कर्नाटक और उसके चहुँवर्ती क्षेत्र में अत्यधिक उपयोगी और प्रसिद्ध थे। --- (पृ.२५०)।

"यापनीयसंघ का विवरण जिन स्थानों से मिलता है, उनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस संघ के साधुओं का वर्चस्व एवं प्रभुत्व आज के धारवाड, बेलगाँव,

---

३८. P.B. Desai : Ibidem p. 403.

३९. R.S. Panchamukh : Karnataka Inscription 1, Dharwar 1941, pp. 75-6.

४०. K.G. Kundamgar : Inscription from N-Karnatak & Kolhapur State 1931.

४१. जिनविजय (कन्नड बेलगाँव १९३१) (मई-जून)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कोल्हापुर एवं गुलवर्गा आदि जिलों के क्षेत्र में अत्यधिक विपुलता से था।[४२] आन्ध्र और तमिलनाडु में इस संघ से संबंधित जो सामग्री प्राप्त है, वह बहुत ही थोड़ी है। **श्रवणबेलगोल में यापनीयसंघ से संबंधित कुछ भी सामग्री का न मिलना इस बात का द्योतक है कि इस पीठ का विकास यापनीय साधुओं को छोड़कर अन्य साधुओं के सहयोग से हुआ। कर्नाटक के उत्तरभाग में ही यापनीयों का जोर था, जो मुख्यतया मंदिरों और संस्थाओं से सम्बन्धित रहते थे** (और इनमें नेमिनाथ और पार्श्वनाथ की ही प्रतिमाओं के प्रति अधिक आग्रह रहता था)।" (पृ.२५०-२५१)।[४३]

यापनीय साहित्य के विषय में डॉ० ए० एन० उपाध्ये लिखते हैं कि "**विख्यात यापनीयों के द्वारा निर्मित साहित्य मुख्यतया दक्षिण भारत में ही उपलब्ध होता है।**"[४४]

उपसंहार करते हुए डॉ० उपाध्ये ने लिखा है—"उपर्युक्त विस्तृत विवरणों से यह स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के शिलालेखों व विवरणों में यापनीयों का प्रसंग बहुलता से विद्यमान है, पर हमें यह भी देखना है कि कन्नड़ और उसके समकक्ष साहित्य में भी यापनीयसंघ के कुछ संदर्भ मिलते हैं कि नहीं? हरिषेण की (९३१-३२ ई०) बृहत्कथा (नं. १३१) में तथा कन्नड़ के '**वड्डाराधने**' में थोड़ा बहुत **जापुलिसंघ** का उल्लेख मिलता है। यद्यपि प्रसंग बड़े भ्रामक हैं, फिर भी दोनों ही ग्रंथों में अर्धफालक, काम्बलिक, श्वेतभिक्षु और यापनीय का उल्लेख है। १२ वीं सदी ई० के कवि जन्न के कन्नड़ 'अनन्तनाथपुराण' में काणूरगण (२.२५) के रामचन्द्रदेव का उल्लेख है और वह मुनिचन्द्र त्रैविद्य को जावलिगेय विशेषण से अलंकृत करता है, पर उसकी सही और स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाता है। सम्भवत: यह वही मुनिचन्द्र हैं, जिनका उल्लेख पार्श्वपंडित (१२२२ ई०) ने अपने कन्नड़ 'पार्श्वनाथ पुराण' (१३३) में किया है।[४५] मेरे विचार से '**जावलिगेय**' विशेषण उनके संघ यापनीय के लिए ही जोड़ा गया है। सबसे अधिक रोचक तो यह है कि कवि जन्न ने जटासिंहनन्दी को और इन्द्रनन्दी को काणूरगण का बताया है, जो कि यापनीयसंघ से घनिष्ठता से सम्बन्धित था। कवि जन्न द्वारा की गई विभिन्न आचार्यों की स्तुति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि गण, गच्छ आदि की पृथक्तावादी प्रवृत्ति को इन कवियों ने नहीं माना था।"[४६]

इस विस्तृत सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि यापनीयों से सम्बन्धित सभी शिलालेख एवं ताम्रपत्रलेख दक्षिण भारत में ही पाये गये हैं, अन्यत्र नहीं। तथा यापनीयों द्वारा

---

४२. See also P.B. Desai, Ibidem, P.P. 164 F.
४३. 'अनेकान्त' महावीर निर्वाण विशेषांक / १९७५ ई. / पृ. २४७-२५१।
४४. वही / पृ.२५२।
४५. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी १९७०/ पृ. १६०-६१।
४६. 'अनेकान्त'/ महावीर निर्वाण विशेषांक /१९७५ ई./ पृ. २५२-२५३।

...वेषालयात पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रचित साहित्य भी दक्षिण भारत में ही उपलब्ध हुआ है। ये तथ्य इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हैं कि यापनीय-सम्प्रदाय का उत्पत्तिस्थल दक्षिण भारत ही है। प्राचीन इतिहास के विद्वान् श्री काशीप्रसाद जायसवाल भी लिखते हैं—"The Yāpana-Saṅgha flourished in the South as they prominently appear in Carnatic inscriptions."[47]

१०

उत्पत्तिकाल : पाँचवीं शती ई० का प्रथम चरण

मुनि श्री कल्याणविजय जी, पं० दलसुखभाई मालवणिया एवं डॉ० सागरमल जी जैन ने बोटिकमत को यापनीयमत माना है, अतः वे बोटिकमत के उत्पत्तिकाल वीरनिर्वाण संवत् ६०९ अर्थात् ई० सन् ८२ को ही यापनीयमत का उत्पत्तिकाल मानते हैं। किन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि बोटिकमत यापनीयमत नहीं था, इसलिए यह भी सिद्ध हो जाता है कि यापनीयसंघ का उत्पत्तिकाल ई० सन् ८२ नहीं है। डॉ० सागरमल जी ने भी आगे चलकर अपना मत बदल दिया और यह नया मत प्रस्तुत किया कि यापनीय और श्वेताम्बर सम्प्रदायों की उत्पत्ति ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय के विभाजन से हुई थी। इस सम्प्रदाय के अस्तित्व की कल्पना डॉक्टर सा० ने स्वयं की है। (देखिये, अध्याय २ / प्र.३ / शी.१)।

श्वेताम्बरसाहित्य में यापनीयसंघ का सर्वप्रथम उल्लेख ८वीं शताब्दी ई० के आचार्य श्री हरिभद्रसूरि के **ललितविस्तरा** ग्रन्थ में मिलता है। तदनन्तर **षड्दर्शनसमुच्चय** के टीकाकार गुणरत्न (१४वीं शती ई०) ने अपनी टीका में उल्लेख किया है। इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त श्वेताम्बरसाहित्य में और कहीं भी यापनीय-सम्प्रदाय का वर्णन नहीं मिलता।

दिगम्बरसाहित्य में आचार्य हरिषेण (१०वीं शती ई०) ने 'बृहत्कथाकोश' के अन्तर्गत भद्रबाहुकथानक में, देवसेनसूरि (१०वीं शती ई०) ने 'दर्शनसार' में तथा रत्ननन्दी (१५वीं शती ई०) ने 'भद्रबाहुचरित' में यापनीय-सम्प्रदाय का निर्देश किया है।

देवसेनसूरि (१०वीं शती ई०) ने अपने 'दर्शनसार' ग्रन्थ में पूर्वाचार्यों द्वारा रचित गाथाओं का संग्रह किया है। उसकी २९वीं गाथा में कहा गया है कि विक्रम राजा की मृत्यु के ७०५ (ई० ६४८) वर्ष बाद कल्याणनगर में श्रीकलश नामक श्वेताम्बरमुनि

47. Quoted in his book 'History of Jaina Monachism' on page 95, by Shantaram Bhalchandra Deo.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

से यापनीयसंघ का उद्भव हुआ।[४८] किन्तु उसकी एक अन्य प्रति में वि० सं० ७०५ के स्थान पर वि० सं० २०५ (ई० सन् १४८) लिखा हुआ है।[४९] इस पर टिप्पणी करते हुए पं० नाथूराम जी प्रेमी लिखते हैं—

"हमारे पास जो तीन प्रतियाँ हैं, उनमें से दो के पाठों से तो इसकी उत्पत्ति का समय वि० सं० ७०५ मालूम होता है और तीसरी 'ग' प्रति के पाठ से वि० सं० २०५ ठहरता है। यद्यपि यह तीसरी प्रति बहुत ही अशुद्ध है, परन्तु ७०५ से बहुत पहले यापनीयसंघ हो चुका था, इस कारण इसके पाठ को ठीक मान लेने को जी चाहता है। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में हरिभद्र नाम के एक बहुत प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। विक्रम संवत् ५८५ में[५०] उनका स्वर्गवास हुआ है और उन्होंने अपनी 'ललितविस्तरा टीका' में यापनीयतंत्र का स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि ५८५ से बहुत पहले यापनीयसंघ का प्रादुर्भाव हो चुका था। इसके सिवाय रायल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे ब्रांच के जर्नल की जिल्द १२ (सन् १८७६) में कदम्बवंशी राजाओं के तीन दानपत्र प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से तीसरे में अश्वमेधयज्ञ के करानेवाले महाराज कृष्णवर्मा के पुत्र देववर्मा के द्वारा यापनीयसंघ के अधिपति को मन्दिर के लिए कुछ जमीन वगैरह दान की जाने का उल्लेख है। चेरा-दानपत्रों में भी इसी कृष्णवर्मा का उल्लेख है और उसका समय वि० संवत् ५२३ के पहले है। अत एव ऐसी दशा में यापनीयसंघ की उत्पत्ति का समय आठवीं नहीं, किन्तु छट्ठी शताब्दी के पहले-पहले समझना चाहिए। आश्चर्य नहीं जो 'ग' प्रति का २०५ संवत् ही ठीक हो। दर्शनसार की अन्य दो-चार प्रतियों के पाठ देखने से इसका निश्चय हो जायगा।"[५१]

यद्यपि प्रेमी जी का यह कथन सत्य है कि यापनीयसंघ की उत्पत्ति वि० सं० ७०५ से बहुत पहले हो चुकी थी, तथापि दर्शनसार की २९ वीं गाथा में 'वि० सं० ७०५' पाठ ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है, २०५ नहीं। क्योंकि दर्शनसार में विक्रम की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न हुए संघों का जिस क्रम से वर्णन है, उसी क्रम से उनका विक्रम-संवत्-वर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ निर्दिष्ट किया गया है। जैसे—

---

४८. कल्लाणे वरणयरे सत्तसए पंच उत्तरे जादे।
जावणियसंघभावो सिरिकलसादो हु सेवडदो॥ २९॥ दर्शनसार।

४९. 'दुण्णिसए पंच उत्तरे' (वही / पादटिप्पणी/ गाथा २९/ पृष्ठ १३)।

५०. हरिभद्रसूरि का काल स्वयं श्वेताम्बर विद्वानों के अनुसार ८ वीं शताब्दी ई. है।

५१. दर्शनसार-विवेचना / दर्शनसार / पृ. ३८-३९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गाथा ११ — श्वेताम्बरसंघ[५२] वि० सं० १३६

गाथा २८ — द्राविड़संघ[५३] वि० सं० ५२६

गाथा २९ — यापनीयसंघ[५४] वि० सं० ७०५

गाथा ३८ — काष्ठासंघ[५५] वि० सं० ७५३

गाथा ४० — माथुरसंघ[५६] वि० सं० ९५३

गाथा ४५ — भिल्लकसंघ[५७] वि० सं० १८००

इस उत्तरोत्तर बढ़ती हुई वर्षसंख्या के क्रम को देखते हुए वि० सं० ७०५ के स्थान में वि० सं० २०५ का निर्देश युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। अतः वहाँ वि० सं० ७०५ ही युक्तियुक्त सिद्ध होता है। तथापि इनमें से किसी भी संघ का उत्पत्तिकाल विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि देवसेन ने स्वयं लिखा है कि उन्होंने 'दर्शनसार' ग्रन्थ की रचना माघ शुक्ल दशमी के दिन वि० सं० ९०९ में धारानगरी में की है।[५८] तब उसके ४४ वर्ष बाद वि० सं० ९५३ में उत्पन्न होनेवाले माथुरसंघ की उत्पत्ति का कालनिर्देश विश्वसनीय कैसे हो सकता है? इसी प्रकार वि० सं० १८०० के बाद भावी भिल्लकसंघ का प्रादुर्भाव बतलाना भी दर्शनसार के सम्पूर्ण कालनिर्धारण को अविश्वसनीय सिद्ध कर देता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ के 'दिगम्बर-श्वेताम्बर-

---

५२. छत्तीसे वरिससए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो॥ ११॥ दर्शनसार।

५३. पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
दक्खिण-महुरा-जादो दाविडसंघो महामोहो॥ २८॥ दर्शनसार।

५४. कल्लाणे वरणयरे सत्तसए पंच उत्तरे जादे।
जावणिय-संघभावो सिरिकलसादो हु सेवडदो॥ २९॥ दर्शनसार।

५५. सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
णंदियडे वरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो॥ ३८॥ दर्शनसार।

५६. तत्तो दु-सएतीदे महुराए माहुराण गुरुणाहो।
णामेण रामसेणो णिप्पिच्छं वण्णियं तेण॥ ४०॥ दर्शनसार।

५७. दक्खिणदेसे विंझे पुक्कलए वीरचंदमुणिणाहो।
अट्ठारसएतीदे भिल्लयसंघं परूवेदि ॥ ४५॥ दर्शनसार।

५८. पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण॥ ४९॥ दर्शनसार।
रइयो दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माह सुद्धदसमीए॥ ५०॥ दर्शनसार।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भेद का इतिहास' नामक षष्ठ अध्याय में प्रदर्शित अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि ई० पू० ५वीं शती (४८९ ई० पू०) में अन्तिम अनुबद्ध केवली जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद मूलसंघ में विभाजन होने पर श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई थी। तत्पश्चात् ई० पू० चौथी शती (३६५ ई० पू०) में अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण मूलसंघ में पुनः विभाजन हुआ और अर्धफालक-सम्प्रदाय का उदय हुआ, जो आगे चलकर श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में विलीन हो गया। किन्तु 'दर्शनसार' में श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति विक्रम की मृत्यु के १३६ वर्ष बाद बतलाई गई है, अतः यह भी प्रमाणविरुद्ध है। सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है। (देखिये, जै.सा.इ./पू.पी./पृ.४९२)। निष्कर्ष यह कि दर्शनसार में यापनीयसंघ की उत्पत्ति का काल जो विक्रम-मृत्यु-संवत् ७०५ या २०५ बतलाया गया है, वह प्रामाणिक नहीं है।

यापनीय-सम्प्रदाय की उत्पत्ति कब हुई थी, इसके निर्णय हेतु हमारे पास उपलब्ध विश्वसनीय प्रमाण केवल अभिलेख हैं। जैसा कि पूर्व में दर्शाया गया है, यापनीयसंघ का सर्वप्रथम उल्लेख दक्षिणभारत के कदम्बवंशीय राजा मृगेशवर्मा के ताम्रपत्रलेख में मिलता है। (देखिये, अध्याय २ / प्र.६ / शी.२)। राजा मृगेशवर्मा का राज्यकाल ४७०-४९० ई० निश्चित है। किसी नये धार्मिक सम्प्रदाय को लोकमान्यता और राजमान्यता पाने के लिए अधिक से अधिक पचास वर्ष का समय पर्याप्त है। अतः यापनीयसंघ का उत्पत्तिकाल उक्त ताम्रपत्रलेख के काल ४७०-४९० ई० से अधिक से अधिक पचास वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा की पाँचवीं शताब्दी का प्रथम चरण माना जा सकता है। यदि उसकी उत्पत्ति इससे पूर्व हुई होती, तो वह इससे पहले लोकमान्यता और राजमान्यता प्राप्त कर लेता। तब इससे पहले के अभिलेखों अथवा साहित्य में उसके नाम का उल्लेख अवश्य होता, जैसे अशोक के सातवें स्तम्भलेख (२४२ ई० पू०) में 'निर्ग्रन्थसंघ' का और ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के बौद्धग्रन्थ 'अपदान' में 'श्वेतवस्त्रसंघ' (श्वेतपटसंघ) का उल्लेख मिलता है। यतः यापनीयसंघ का उल्लेख पाँचवीं शताब्दी ई० से पूर्व के किसी भी अभिलेख या साहित्य में नहीं मिलता, अतः सिद्ध है कि उसकी उत्पत्ति ईसा की पाँचवीं शताब्दी के पूर्व नहीं हुई, पाँचवीं शताब्दी ई० का प्रथम चरण ही उसका उत्पत्तिकाल है। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय का उदयकाल साहित्यिक प्रमाणों से जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् अर्थात् ई० पू० पाँचवीं शताब्दी सिद्ध है तथा एकान्त-अचेलमार्गी निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरसम्प्रदाय) का अस्तित्व जैनेतरसाहित्य एवं पुरातत्त्व में उपलब्ध प्रमाणों से ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व से सिद्ध होता है। यापनीयसंघ को पाँचवीं शताब्दी ई० से पूर्व का सिद्ध करनेवाला कोई भी साहित्यिक या पुरातात्त्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। डॉ० सागरमल जी ने भी इसे स्वीकार किया

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है। स्व० पण्डित नाथूराम जी प्रेमी ने तत्त्वार्थभाष्य को यापनीय कृति माना है। इसका खण्डन करते हुए डॉक्टर सा० लिखते हैं—

"भाष्य तो यापनीय-परम्परा के पूर्व का है। भाष्य तीसरी-चौथी शती का है और यापनीय-सम्प्रदाय चौथी-पाँचवीं शती के पश्चात् ही कभी अस्तित्व में आया है।" (जै.ध.या.सं./ पृ.३५७)।

उमास्वाति के सम्प्रदाय का निर्धारण करते समय भी डॉक्टर सा० लिखते हैं—"वे यापनीय भी नहीं हैं, क्योंकि यापनीय-सम्प्रदाय का सर्वप्रथम अभिलेखीय प्रमाण भी विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्वार्ध और ईसा की पाँचवीं शती के उत्तरार्ध (ई० सन् ४७५) का मिलता है।" (जै. ध. या. स. / पृ.३७३)।

अन्यत्र भी उन्होंने कहा है—"तत्त्वार्थसूत्र के रचनाकाल तक यापनीय उत्पन्न ही नहीं हुए थे, अतः उसे यापनीय (ग्रन्थ) भी नहीं कहा जा सकता है।" (जै. ध. या. स. / पृ.३५०)।

एक स्थान पर उन्होंने अपना मत निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—"यह सही है कि ईसा की दूसरी शताब्दी से वस्त्रपात्र के प्रश्न पर विवाद प्रारंभ हो गया था, फिर भी यह निश्चित है कि पाँचवीं शताब्दी से पूर्व श्वेताम्बर दिगम्बर और यापनीय जैसे सम्प्रदाय अस्तित्व में नहीं आ पाये थे। निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बर), श्वेतपट-महाश्रमणसंघ और यापनीयसंघ का सर्वप्रथम उल्लेख हल्सी के पाँचवीं शती के अभिलेखों में ही मिलता है।" (जै. ध. या. स. / पृ. ३६८)।

इस प्रकार यापनीयसंघ का उत्पत्तिकाल ईसा की पाँचवीं शती का प्रारंभ ही सिद्ध होता है।

पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने पूर्वोद्धृत वचनों में श्वेताम्बराचार्य श्री हरिभद्रसूरि का स्वर्गवास विक्रम संवत् ५८५ में माना है, वह समीचीन नहीं है। डॉ० मोहनलाल जी मेहता लिखते हैं—"जैन परम्परा के अनुसार विक्रमसंवत् ५८५ अथवा वीरसंवत् १०५५ अथवा ई०स० ५२९ में हरिभद्रसूरि का देहावसान हो गया था। इस मान्यता को मिथ्या सिद्ध करते हुए हर्मन जेकोबी लिखते हैं कि ई० सन् ६५० में होनवाले धर्मकीर्ति के तात्त्विक विचारों से हरिभद्र परिचित थे, अतः यह संभव नहीं है कि हरिभद्र ई० सन् ५२९ के बाद न रहे हों। हरिभद्र के समयनिर्णय का एक प्रबल प्रमाण **उद्योतन** का **कुवलयमाला** नामक प्राकृत ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ शक संवत् ७०० की अन्तिम तिथि अर्थात् ई० सन् ७७९ के मार्च की २१ वीं तारीख को पूर्ण हुआ था। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में उद्योतन ने हरिभद्र का अपने दर्शनशास्त्र के गुरु के

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रूप में उल्लेख किया है तथा उनका अनेक ग्रन्थों के रचयिता के रूप में वर्णन किया है। इस प्रमाण के आधार पर मुनि श्री जिनविजय जी इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि महान् तत्त्वज्ञ आचार्य हरिभद्र और 'कुवलयमाला' कथा के कर्त्ता **उद्योतनसूरि** अपरनाम **दाक्षिण्यचिह्न** दोनों (कुछ समय तक तो अवश्य ही) समकालीन थे। --- अत: हम ई० सन् ७०० से ७७० अर्थात् वि० सं० ७५७ से ८२७ तक हरिभद्रसूरि का सत्तासमय निश्चित करते हैं।" (जैन साहित्य का बृहद् इतिहास/भाग ३/पृ० ३५९)।

अत: पं० नाथूराम जी प्रेमी ने श्री हरिभद्रसूरि का स्वर्गवास वि० सं० ५८५ में मानकर उनके ग्रन्थ 'ललितविस्तरा' में 'यापनीयतन्त्र' का उल्लेख होने से जो यापनीय-संघ की उत्पत्ति वि० सं० ५८५ से बहुत पहले मानी है, वह समीचीन नहीं है। उसकी उत्पत्ति वि० सं० ५८५ से पहले अवश्य हुई थी, किन्तु बहुत पहले नहीं, अपितु १०० वर्ष पहले अर्थात् पाँचवीं शती ई० के प्रथम चरण में।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय प्रकरण

खारवेल-अभिलेख की समीक्षा

१

'यापज्ञापक' का अर्थ 'यापनीय आचार्य' नहीं

ईसापूर्व द्वितीय शती के सम्राट् खारवेल के हाथीगुम्फाभिलेख में **यापञवकेहि** या **यापञावकेहि** (यापज्ञापकेभ्यः) पद का प्रयोग हुआ है। यथा—

"--- सिनो वसीकरोति। तेरसमे च वसे सुपवत विजयचक-कुमारीपवते अरहिते (य?) पखीण संसितेहि कायनिसीदीयाय यापञवकेहिं (यापञावकेहिं) राजभितानि चिनवतानि वसा-सितानि। पूजायरत उवास खारवेलसिरिना जीवदेहसिरिका परिखिता।"
(चन्द्रकान्तबाली शास्त्री : खारवेलप्रशस्ति : पुनर्मूल्यांकन / पृ.१६)।

इस पंक्ति में आये **यापञवकेहिं (यापज्ञापकेभ्यः)** शब्द का प्रसिद्ध इतिहासकार श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने 'यापनीय आचार्य' अर्थ किया है। वे लिखते हैं—

"Yāpa-ñāvakas (Skt. yāpa-Jñāpakas) 'the teachers of yāpa,' cannot be identified without reference to the history of Jainism. The Bhadrabāhu-carita in giving the history of Jainism immediately after the teacher Bhadrabāhu, a contemporary of Candragupta, says that amongst the numerous disciples of Bhadrabāhu who worshipped the bones of their master a school called Yāpana-Saṅgha arose and that they finally decided to remain without clothes. The Yāpana-Saṅgha flourished in the south as they prominently appear in Carnatic inscriptions. They are now extinct. Muni JINAVIJAYA is of opinion that some tenets of theirs bore affinity to the Digambara school and some of the Śvetāmbara. In view of this opinion the Yāpana school marked the stage before the great schism. Our Inscription shows that Yāpa which gave the name of the School consisted of certain pious practices.

---The professors of Yāpa were at the Kāyya-Nishīdī on the 'revered (arahite) Kumārī Hill'. That his Nishīdī was a Nishīdī of the Arhat is proved by the next line. In this volume of the Journal (IV, 96) I drew attention to the technical meaning of the Jaina Nishīdī 'resting place', a 'tomb'. The Nishīdī at the Kumārī Hill was not an ornamental tomb, but a real stūpa, for it is qualified Kāyya, corporeal (i.e. having remains of the body). Thus it seems that the Jains called their stūpas or chaityas Nishīdīs. The Jaina Stūpa discovered at Mathurā and the datum of the Bhadrabāhu-carita saying that the desciples of Bhadrabāhu worshipped

श्री दिगम्बर जैन पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

the bones of their Master, establish the fact that the Jainas (at any rate the Digambaras) observed the practice of erecting monuments on the remains of their teachers ---" [59]

माननीय काशीप्रसाद जी जायसवाल ने **यापज्ञापक** शब्द से जो 'यापनीय-आचार्य' अर्थ ग्रहण किया है वह उनकी महान् भ्रान्ति है। वस्तुतः वे इस विषय में अन्त तक अनिश्चय की स्थिति में रहे हैं, क्योंकि यहाँ उन्होंने **यापज्ञापक** शब्द को यापनीय-आचार्यों का वाचक बतलाया है, तो एक अन्य आलेख में उसका अर्थ 'श्वेताम्बर मुनि' किया है। **नागरीप्रचारिणी पत्रिका** (भाग १०/अङ्क ३) में वे लिखते है—

"इस लेख की १४वीं पंक्ति में लिखा है कि राजा ने कुछ जैन साधुओं को रेशमी कपड़े और उजले कपड़े नजर किये—"**अरहयते पखीनसंसितेहि कायनिसीदीयाय यापञवकेहि राजभितिनि चिनवतानि वासासितानि**" अर्थात् "**अर्घयते प्रक्षीणसंसृतिभ्यः कायनिषीद्यां यापज्ञापकेभ्यः राजभृतीश्चीनवस्त्राणि वासांसि सितानि।**"

"इससे यह विदित होता है कि श्वेतवस्त्र धारण करने वाले जैन साधु , जो कदाचित् यापज्ञापक कहलाते थे, खारवेल के समय में अर्थात् प्रायः १७० ई० पू० (११० विक्रमाब्द पूर्व) भारत में वर्तमान थे, मानो श्वेताम्बर जैन शाखा के वे पूर्वरूप थे। 'चीन' गिलगिट की एक जाति को कहते थे। इन्हें अब शीन कहते हैं। ये सदा से रेशम बनाते हैं। खारवेल ने कुमारीपर्वत पर, जहाँ पहले महावीर स्वामी या कोई दूसरे जिन उपदेश दे चुके थे, क्योंकि उस पर्वत को सुपवतविजयचक्र (सुप्रवृत्तविजयचक्र) कहा है, स्वयं कुछ दिन तपस्या, व्रत उपासकरूप से किया और लिखा है कि जीव-देह का भेद उन्होंने समझा। इससे सिद्ध हुआ कि तपस्या, जीव-देह का दार्शनिक विचार आदि उसी समय से अथवा उसके आगे से जैनधर्म में चला आता है।"[६०]

इतना ही नहीं, माननीय जायसवाल जी ने एक अन्य लेख में 'यापज्ञापक' की जगह **पापज्ञापक** (पापों को बतानेवाले अर्थात् पापों से सावधान करनेवाले) पाठ ग्रहण किया है। इससे उसके यापनीय-आचार्यों का वाचक होने का आधार ही समाप्त हो जाता है। मुनि श्री पुण्यविजय जी **पापज्ञापक** शब्द के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं—

---

59. JBORS., Vol. IV, pp. 338-90, quoted by Shantaram Bhalchandra Deo, in his book 'History of Jain Monachism' on pages 95-96.

६०. 'श्री खारवेलप्रशस्ति और जैनधर्म की प्राचीनता'/ नागरी प्रचारिणी पत्रिका / भाग १० / अङ्क ३ ('अनेकान्त'/ वर्ष १/ किरण ४ / फाल्गुन, वीर निर्वाण सं. २४५६/ वि० संवत् १९८६/ पृष्ठ २४२ से उद्धृत)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"मान्य विद्वन्महोदय श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल महाशय ने कलिंगचक्रवर्ती महाराज खारवेल के शिलालेख का वाचन, छाया और अर्थ आदि बड़ी योग्यता के साथ किया है। तथापि उस शिलालेख में अद्यापि ऐसे अनेक स्थान हैं, जो अर्थ की अपेक्षा शंकित हैं।--- श्रीमान् जायसवाल महाशय ने **कायनिसीदीयाय यापञावकेहि** इस अंश की **कायनिषीद्यां पापज्ञापकेभ्यः** ऐसी संस्कृत-छाया करके "कायनिषीदी (स्तूप) पर (रहनेवालों) पाप बताने-वालों (पापज्ञापकों) के लिए," ऐसा जो अर्थ किया है, इसके बदले में उपरि-निर्दिष्ट अंश की छाया और इसका अर्थ इस प्रकार करना अधिकतर उचित होगा—

"**छाया—'कायनैषेधिक्या यापनीयकेभ्यः—यापनीयेभ्यः।'**

"**अर्थ—(केवल मन और वचन से ही नहीं, बल्कि) काय के द्वारा प्राणातिपात आदि अशुभ क्रियाओं की निवृत्ति द्वारा (धर्म का) निर्वाह करने वालों के लिए।**"[६१]

यहाँ मुनि जी ने श्री जायसवाल द्वारा किये गये 'पापज्ञापक' जैसे अर्थों को शंकित बतलाया है। इससे सहमति व्यक्त करते हुए 'अनेकान्त' के तत्कालीन सम्पादक पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने यह टिप्पणी की है—"अर्थ की अपेक्षा ही नहीं, किन्तु शब्दसाहित्य की अपेक्षा भी अभी शंकित हैं। प्रकृत पंक्ति का पाठादिक भी पहले कुछ प्रकट किया था और पीछे से कुछ, और इसलिए उसकी विशिष्ट जाँच होने की जरूरत है। 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका भाग १०, अङ्क ३ में 'जो कदाचित् यापज्ञापक कहलाते थे' ऐसा भी लिखा है।"[६२] इन दो महानुभावों की उक्त टिप्पणियों से मेरे इस मत की पुष्टि होती है कि '**यापञावकेहि**' शब्द के विषय में माननीय जायसवाल जी अन्त तक अनिश्चय की स्थिति में रहे हैं।

श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल का पूर्वोद्धृत (अँगरेजी लेख में व्यक्त) यह मत भी समीचीन नहीं है कि "भद्रबाहुचरित के उल्लेख के अनुसार श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्यों में से कुछ अपने मृत गुरु की अस्थियों को पूजते थे, उन्होंने ही यापनीयसंघ को जन्म दिया और अन्ततः नग्न रहने का निर्णय किया।" अस्थिपूजा उन साधुओं ने शुरू की थी, जिन्होंने द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के समय भद्रबाहु के साथ दक्षिणभारत जाने से इनकार कर दिया था और उत्तरभारत की दुर्भिक्षजन्य विपत्तियों से विचलित होकर वस्त्रपात्रादि ग्रहण कर लिये थे तथा अर्धफालक साधु कहलाने लगे थे। दुर्भिक्ष समाप्त होने के बाद उनके गुरु स्थूलाचार्य ने उनसे मूल निर्ग्रन्थमार्ग (दिगम्बरमार्ग)

६१. मुनि पुण्यविजय जी : 'महाराजा खारवेलसिरि के शिलालेख की १४वीं पंक्ति' ('अनेकान्त'/ वर्ष १/ किरण ३/ माघ, वीर नि.सं. २४५६ / विक्रम सं. १९८६ / पृ. १४२)।
६२. वही / पादटिप्पणी / पृ. १४२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अपना लेने के लिए कहा, तब कुछ ने तो अपना लिया, किन्तु कुछ युवा साधुओं ने क्रोध में आकर स्थूलाचार्य का दण्डप्रहार से वध कर दिया। स्थूलाचार्य मरकर व्यन्तर हुए और उन्हें सताने लगे। तब उनके प्रकोप को शान्त करने के लिए युवा साधुओं ने कहा कि हम आपकी पूजा किया करेंगे, आप हम पर प्रसन्न हों। इससे व्यन्तर शान्त हो गया और वे साधु मृतक स्थूलाचार्य की हड्डियाँ ले आये और उनमें गुरु की कल्पना कर पूजने लगे।[६३] इस तरह अस्थिपूजा का प्रचलन अर्धफालकसम्प्रदाय के साधुओं ने किया था, न कि भद्रबाहु के दिगम्बर शिष्यों ने। तथा भद्रबाहु के शिष्य तो शुरू से ही नग्न रहते थे, अतः उनके द्वारा यापनीयसंघ की स्थापना कर नग्न रहने का निर्णय किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। रत्ननन्दी ने तो भद्रबाहुचरित में यह लिखा है कि करहाटक नाम के नगर में राजा से सत्कार पाने के लिए उनकी रानी नृकुलादेवी के प्रार्थना करने पर श्वेताम्बर साधुओं ने वस्त्रत्याग कर नग्नरूप धारण कर लिया था, किन्तु सिद्धान्त श्वेताम्बरपरम्परा के ही मानते रहे, इस प्रकार श्वेताम्बरसाधुओं से यापनीय-सम्प्रदाय का जन्म हुआ था। (भ.बा.च. ४/१३७-१५४)। अतः माननीय जायसवाल जी ने जो यह कहा है कि 'भद्रबाहुचरित' के अनुसार यापनीय-सम्प्रदाय का उदय दिगम्बर-श्वेताम्बर-संघभेद के पूर्व हुआ था, वह प्रामाणिक नहीं है।

प्रसिद्ध इतिहासकार माननीय शान्ताराम भालचन्द्र देव ने जायसवाल जी के इस मत से असहमति प्रकट की है। वे लिखते हैं—

"Inspite of this alleged identity of Yāpa with the yāpanīyas which JAYASWAL wants to bring out, it may be noted that neither literary nor epigraphical sources are available of such antiquity, as ascribed to the Khāravela inscription, to corroborate the existence of Yāpanīyas in the second century B.C." (S.B. Deo : History of Jaina Monachism, p.96)

श्री जायसवाल जी ने आगे चलकर **यापञावकेहि** पद का मुनि श्री पुण्यविजय जी द्वारा बतलाया अर्थ (धर्म का निर्वाह करनेवालों के लिए) स्वीकार कर लिया।

---

६३. स्थूलाचार्यस्ततः प्रोचे नैतद्दर्शनमुत्तमम्। किम्पाकफलवद्रम्यमधुनाग्रेति दुःखदम्॥
मूलमार्गं परित्यज्य कापथं कल्पयन्ति ये। भ्रमन्ति ते भवारण्ये मरीचाद्या यथा पुरा॥
दुष्टैश्चण्डैः शिष्यैर्मौण्डैर्दण्डैर्दण्डैर्हतो हठात्। जीर्णाचार्यस्ततो क्षिप्तो गर्त्ते कूटेन तत्र तैः॥
कुशिष्याणां हि शिक्षापि खलमैत्रीव दुःखदा। मृत्वार्त्तध्यानतः सोऽपि व्यन्तरः समजायत॥
विद्वित्वावधिबोधेन देवोऽसौ पूर्वसम्भवम्। चकार मुनिमन्यानां नितरां दुरुपद्रवम्॥
नीत्वातिविनयाच्छान्तिं कुपितं व्यन्तराऽमरम्। गुरोरस्थिं समानीय तत्र सङ्कल्पते गुरुः॥
नित्यमर्चन्ति वन्दन्ते लोकेऽद्यापि लपन्ति तम्। **खमणादिहडीत्याख्यं** क्षपणास्थिप्रकल्पनात्॥
यथाविधि परिस्थाप्य पूजितः सोऽर्द्धफालकैः। परित्यक्तं ततस्तेन चेष्टितं विक्रियामयम्॥
(रत्ननन्दी : भद्रबाहुचरित / परिच्छेद ४ / श्लोक १२, १३, १८, १९, २०, २५, २६, २८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वे लिखते हैं—''मुनि श्री पुण्यविजय जी के लेख ('अनेकान्त' पृ० १४२) से 'यापज्ञापक' शब्द का अर्थ साफ हो गया, जिसकी खोज मुझे बहुत दिनों से थी। कई वर्षों के अध्ययन से 'यापञावक' पाठ निश्चित किया गया था, पर अर्थ का पता नहीं लगता था। मैं मुनिजी का बहुत अनुगृहीत हूँ। (चैत्र शु० ११, वी० नि० २४५६)।''[६४]

इससे यह निश्चित हो जाता है कि 'यापज्ञापक' शब्द का अर्थ 'यापनीय आचार्य' नहीं है। अतः ईसापूर्व द्वितीय शती में यापनीय-सम्प्रदाय के अस्तित्व की संभावना निरस्त हो जाती है।

२

'धर्मनिर्वाहक' भी नहीं, अपितु धर्मोपदेशक

किन्तु मुनि श्री पुण्यविजय जी ने तथा उनके अनुसार श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल ने **यापज्ञापक** पद से जो **यापनीयक** अर्थात् धर्म का निर्वाह करनेवाला' अर्थ लिया है, वह शब्दों से प्रतिपादित नहीं होता। 'यापज्ञापक' का शाब्दिक अर्थ है 'याप का ज्ञापक' अर्थात् याप का ज्ञान करानेवाला। मोनियर विलियम्स की संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी में **याप** शब्द का एक अर्थ cure अर्थात् किसी रोग की चिकित्सा भी दिया गया है। अतः धर्म के प्रकरण में 'याप' शब्द का अर्थ 'संसार दुःखरूप रोग की चिकित्सा अर्थात् संसार से मोक्ष का उपाय' युक्तियुक्त सिद्ध होता है। फलस्वरूप 'यापज्ञापक' का अर्थ है—मोक्षमार्ग या धर्म का ज्ञापक (उपदेशक) साधु। 'ज्ञापक' शब्द से 'निर्वाह करनेवाला' अर्थ प्रतिपादित नहीं होता, यदि शिलालेख में 'यापनीयक' शब्द ही होता, तो हो सकता था। अतः मुनि पुण्यविजय जी द्वारा कल्पित किया गया 'धर्म का निर्वाह करनेवाला' अर्थ मान्य नहीं हो सकता।

३

'यापञावकेहि' में चतुर्थी नहीं, तृतीया

इसके अतिरिक्त 'यापञावकेहि' का जो 'यापज्ञापकों के लिए' इस प्रकार सम्प्रदान-कारक-रूप अर्थ किया गया है, वह भी समीचीन नहीं है, क्योंकि उसमें तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है, चतुर्थी का नहीं। अतः वह करणकारक है। पालि और प्राकृत में सम्प्रदानकारक का बोध कराने के लिए षष्ठी का प्रयोग होता है।[६५] उदाहरण इसी शिलालेख में देखे जा सकते हैं, यथा—

---

६४. 'अनेकान्त'/ वर्ष १ / किरण ६,७ / वैशाख, ज्येष्ठ, वीर नि. २४५६ / पृष्ठ ३५२।
६५.'चतुर्थ्याः षष्ठी' (सिद्धहेमशब्दानुशासन ३/१३१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

नमो अरहंतानं (षष्ठी) — नमोऽर्हद्भ्यः (चतुर्थी)
नमो सवसिद्धानं (षष्ठी) — नमः सर्वसिद्धेभ्यः (चतुर्थी)

'हि' या 'हिं' प्रत्यय सर्वत्र तृतीया विभक्ति[६६] (करणकारक) के बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। जैसे—

पनतीसाहि सतसहसेहिं	—	पञ्चत्रिंशद्भिः शतसहस्रैः (तृतीया बहुवचन)
कारापनाहि	—	कारणैः (तृतीया)
समुथापिताहि	—	समुत्थापिताभिः (तृतीया)
हिताहि	—	हृताभिः (तृतीया)
सिलाहि	—	शिलाभिः (तृतीया)

इन उदाहरणों से सिद्ध है कि **पखीणसंसितेहि** और **यापञवकेहि** भी तृतीयान्तरूप हैं, अतः करणकारक हैं। उनकी संस्कृत-छाया इस प्रकार होगी—**प्रक्षीणसंसृतिभिः** एवं **यापज्ञापकैः**। इसलिए उनका अर्थ होगा—'संसारचक्र के विनाश में संलग्न यापज्ञापकों के द्वारा।'

४

तृतीयान्त के लिए 'वस्त्रादिदान' अर्थ संगत नहीं

अतः मुनि जी एवं जायसवाल जी ने जो 'यापज्ञापकों के लिए' यह सम्प्रदानकारक-रूप अर्थ किया है, वह व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा असंगत है। इसलिए राजा ने यापज्ञापकों के लिए रेशमी और श्वेतवस्त्र भेंट किये, यह अर्थ भी असंगत है। यहाँ तो यापज्ञापकों के द्वारा रेशमी और श्वेतवस्त्र भेंट किये गये, यह अर्थ निकल सकता है। किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अर्थ संगत नहीं है, क्योंकि मोक्षमार्ग के उपदेशक सर्वसंगत्यागी मुनियों के द्वारा किसी को वस्त्रादि भेंट किया जाना संभव नहीं है। अतः मुनि जी और जायसवाल जी ने ' राजभितानि चिनवतानि वसासितानि' का जो राजभृति, चीनांशुक (रेशमी) तथा श्वेतवस्त्र अर्थ किया है वह भी अनुपपन्न है।

यद्यपि 'निषद्या'[६७] (परीषहविशेष) और 'निषीधिका' (अर्हदादि एवं मुनिराजों का समाधि-स्थान)[६८] शब्द दिगम्बर-साहित्य में भी उपलब्ध हैं, तथापि मुनि पुण्यविजय जी ने 'कायनिसीदीयाय' पद में 'निसीदी' शब्द का जो "**निषेधनं निषेधः, निषेधेन**

६६. 'भिसो हि हिँ हिं' (वही ३ / ७)।
६७. सर्वार्थसिद्धि / ९ / ९।
६८. "णिसिहीओ निषिधीर्योगिवृत्तिर्यस्यां भूमौ स निषिधी इत्युच्यते।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गाथा 'जम्मणअभि' १४५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

निर्वृत्ता नैषेधिकी, प्राकृतशैल्या छान्दसत्वाद्वा 'नैषीधिका' इत्युच्यते''[६९] इस व्युत्पत्ति के आधार पर निषेधपरक अर्थ सुझाया है, वह युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

किन्तु **कायनिसीदीयाय** तृतीयान्त नहीं है, जैसा कि मुनि पुण्यविजय जी ने **कायनैषेधिक्या,** संस्कृत छाया करके प्रकट किया है। यह चतुर्थी या षष्ठी का एकवचनात्मक रूप है और उसका अभिप्राय है **काय के निषेध (काय से ममत्व के त्याग) के लिए।**

इन अर्थों के साथ सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ इस प्रकार घटित होता है—

तेरसमे च वसे = तेरहवें वर्ष में, **सुपवत-विजयचककुमारीपवते अरहिते** = पूज्य कुमारीपर्वत पर, जहाँ (जैनधर्म का) विजयचक्र सुप्रवृत्त है,[७०] **पखीणसंसितेहि (प्रक्षीणसंसृतिभिः)** = संसार के विनाश में संलग्न, **यापञवकेहि (यापज्ञापकैः)** = मोक्षमार्ग के उपदेशक मुनियों के द्वारा (राजा को), **कायनिसीदीयाय** = काय से ममत्व त्यागने के लिए, **राजमितानि** = राजोचित (ढंग से) **चिनवतानि (चिद्व्रतानि)** = आत्मसाधक ज्ञान एवं व्रतों का, **सासितानि (शासितानि)** = उपदेश दिया। (उस उपदेश से) **पूजायरत-उवास-खारवेलसिरिना (पूजायां रतोपवासेन क्षारवेलेन श्रीमता)**[७१] = पूजा एवं उपवास करनेवाले श्री खारवेल ने, **जीवदेहसिरिका (जीवदेहश्रीकता)** = जीव और देह के भेद को, **परिखिता (परीक्षिता)** = परख लिया[७१] और देह से ममत्व छोड़ दिया।

लेख की इस १४वीं पंक्ति में डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने **राजभितिनि** पद पढ़ा है, श्री चन्द्रकान्तबाली शास्त्री ने **राजभितानि** तथा डॉ० शशिकान्त जी ने **'राजभतिना।'** मेरी दृष्टि से **राजमितानि** पद होना चाहिये, क्योंकि ऊपर दिखलाये अनुसार सम्पूर्ण वाक्य का जो अर्थ घटित होता है, उसमें **'राजमितानि'** पद ही संगत बैठता है। इसी प्रकार श्री चन्द्रकान्तबाली शास्त्री ने **वसासितानि** का संस्कृतपाठ **'(एव?) शासिता'** किया है। (पृ. १६)। मुझे भी यह संगत प्रतीत हुआ है। अतः मैंने 'एव' के अवशिष्ट रूप 'व' का उल्लेख न करते हुए **सासितानि** पद ग्रहण किया है। तथा शास्त्री जी ने **उवास** शब्द का हिन्दी अर्थ **उपवास** किया है। (पृ.१६), मैंने भी उसे उपयुक्त माना है।

श्री चन्द्रकान्तबाली शास्त्री ने भी **चिनवतानि वसासितानि** का 'रेशमी और श्वेत वस्त्र' अर्थ नहीं किया, अपितु **राजभृतिश्चीर्णवता (एव?) शासिता** ऐसी संस्कृत छाया

---

६९. आवश्यकसूत्र / हारिभद्रीय टीका / पत्र ५४६-४७ ('महाराजा खारवेलसिरि के शिलालेख की १४ वीं पंक्ति'/ 'अनेकान्त' वर्ष १ / किरण ३ / पृष्ठ १४३)।

७०. 'सुप्रवृत्तविजयचक्रे'—चन्द्रकान्तबाली शास्त्री : खारवेलप्रशस्ति : पुनर्मूल्यांकन / पृ. १६।

७१. चन्द्रकान्तबाली शास्त्री : खारवेलप्रशस्ति : पुनर्मूल्यांकन / पृ. १६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कर 'पापज्ञापकों (पाप बताने वालों) के लिए राजभृतियाँ कायम कर दीं (शासित कर दीं)' यह अर्थ किया है।[७१]

डॉ० शशिकान्त जी ने पूर्ववर्ती अन्य विद्वानों का अनुसरण करते हुए कुछ भिन्न पाठ ग्रहण किये हैं, जैसे 'अरहते', 'यापुजवकेहि', 'राजभतिना', 'चिनवताना', 'वससिताना', 'पूजानुरत-उवासग', 'जीवदेहसिरिता', 'परिखाता' आदि तथा इनका अर्थ प्रतिपादन भी पर्याप्त भिन्न है।[७२] किन्तु यहाँ मीमांसा का मुख्य विषय 'यापञवकेहि' या 'यापुजवकेहि' पद है। इसे शशिकान्त जी ने 'यापनीयों' का वाचक नहीं माना है। उन्होंने अपने निष्कर्ष का प्रतिपादन निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"The yāpanīya Sect formally came into existence towards the middle of the second century A.D. It was a reversion to the austere and also an effort to bridge up the gap between the Śvetāmbar and Digambara modes and doctrines. It has, all the same, no relation to yāpujavakehi in L 14 of our inscription."[73]

५

खारवेल का श्वेताम्बरत्व भी सिद्ध नहीं

यतः शिलालेख के 'चिनवतानि' आदि शब्दों से 'रेशमी और श्वेतवस्त्र' अर्थ निष्पन्न नहीं होता, अतः मुनि श्री पुण्यविजय जी आदि ने जो यह प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है कि खारवेल ने श्वेताम्बर साधुओं को वस्त्रदान किया था, अतः वह श्वेताम्बर था, वह भी निरस्त हो जाता है। और यदि शिलालेख में वास्तव में वस्त्रदान का उल्लेख होता, तो भी वह श्वेताम्बर सिद्ध नहीं हो सकता था, क्योंकि एक राजा की हैसियत से वह सभी धर्मों का सम्मान करता था, उसने शिलालेख में स्वयं लिखवाया है—"**सबपाखंडपूजको सबदेवायतन-संस्कारकारको --- राजा खारवेलसिरि**" (खारवेल राजा सभी धार्मिक सम्प्रदायों का सम्मान और सभी देवायतनों का जीर्णोद्धार करता है)। इसीलिए उसने ब्राह्मणों को भी स्वर्णनिर्मित कल्पवृक्ष, हाथी, घोड़े, रथ, भवन आदि दान में दिये थे, जैसा कि शिलालेख की निम्नलिखित पंक्ति से सूचित होता है—

"**कपरुखे हय-गज-रथ-सहयत्ते सवयरावास परिवसने स अगिणठिया। सब गहने च कारयितुं बम्हणाने जातिं परिहारं ददाति। अरहतो --- ब --- न --- गिव।**"

७२. Shashikant : The Hāthīgumphā Inscription of Khāravela and The Bhabru Edict of Aśoka, Appendix I , p.112 and Appendix II , p. 117.

73. वही / पृ.६८ / पादटिप्पणी २।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

निर्वृत्ता नैषेधिकी, प्राकृतशैल्या छान्दसत्वाद्वा 'नैषीधिका' इत्युच्यते''[६९] इस व्युत्पत्ति के आधार पर निषेधपरक अर्थ सुझाया है, वह युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

किन्तु **कायनिसीदीयाय** तृतीयान्त नहीं है, जैसा कि मुनि पुण्यविजय जी ने **कायनैषेधिक्या,** संस्कृत छाया करके प्रकट किया है। यह चतुर्थी या षष्ठी का एकवचनात्मक रूप है और उसका अभिप्राय है **काय के निषेध (काय से ममत्व के त्याग) के लिए।**

इन अर्थों के साथ सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ इस प्रकार घटित होता है—

तेरसमे च वसे = तेरहवें वर्ष में, **सुपवत-विजयचककुमारीपवते अरहिते** = पूज्य कुमारीपर्वत पर, जहाँ (जैनधर्म का) विजयचक्र सुप्रवृत्त है,[७०] **पखीणसंसितेहि (प्रक्षीणसंसृतिभिः)** = संसार के विनाश में संलग्न, **यापञवकेहि (यापज्ञापकैः)** = मोक्षमार्ग के उपदेशक मुनियों के द्वारा (राजा को), **कायनिसीदीयाय** = काय से ममत्व त्यागने के लिए, **राजमितानि** = राजोचित (ढंग से) **चिनवतानि (चिद्व्रतानि)** = आत्मसाधक ज्ञान एवं व्रतों का, **सासितानि (शासितानि)** = उपदेश दिया। (उस उपदेश से) **पूजायरत-उवास-खारवेलसिरिना (पूजायां रतोपवासेन क्षारवेलेन श्रीमता)**[७१] = पूजा एवं उपवास करनेवाले श्री खारवेल ने, **जीवदेहसिरिका (जीवदेहश्रीकता)** = जीव और देह के भेद को, **परिखिता (परीक्षिता)** = परख लिया[७१] और देह से ममत्व छोड़ दिया।

लेख की इस १४वीं पंक्ति में डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने **राजभितिनि** पद पढ़ा है, श्री चन्द्रकान्तबाली शास्त्री ने **राजभितानि** तथा डॉ० शशिकान्त जी ने **'राजभतिना।'** मेरी दृष्टि से **राजमितानि** पद होना चाहिये, क्योंकि ऊपर दिखलाये अनुसार सम्पूर्ण वाक्य का जो अर्थ घटित होता है, उसमें **'राजमितानि'** पद ही संगत बैठता है। इसी प्रकार श्री चन्द्रकान्तबाली शास्त्री ने **वसासितानि** का संस्कृतपाठ **'(एव?) शासिता'** किया है। (पृ. १६)। मुझे भी यह संगत प्रतीत हुआ है। अतः मैंने 'एव' के अवशिष्ट रूप 'व' का उल्लेख न करते हुए **सासितानि** पद ग्रहण किया है। तथा शास्त्री जी ने **उवास** शब्द का हिन्दी अर्थ **उपवास** किया है। (पृ.१६), मैंने भी उसे उपयुक्त माना है।

श्री चन्द्रकान्तबाली शास्त्री ने भी **चिनवतानि वसासितानि** का 'रेशमी और श्वेत वस्त्र' अर्थ नहीं किया, अपितु **राजभृतिश्चीर्णवता (एव?) शासिता** ऐसी संस्कृत छाया

---

६९. आवश्यकसूत्र / हारिभद्रीय टीका / पत्र ५४६-४७ ('महाराजा खारवेलसिरि के शिलालेख की १४ वीं पंक्ति'/ 'अनेकान्त' वर्ष १ / किरण ३ / पृष्ठ १४३)।

७०. 'सुप्रवृत्तविजयचक्रे'—चन्द्रकान्तबाली शास्त्री : खारवेलप्रशस्ति : पुनर्मूल्यांकन / पृ. १६।

७१. चन्द्रकान्तबाली शास्त्री : खारवेलप्रशस्ति : पुनर्मूल्यांकन / पृ. १६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

संस्कृत छाया—'कल्पवृक्षान् हयगजरथान् सयंतृन् सर्वगृहावास परिवसनानि साग्निष्ठि-कानि। सर्वग्रहणं च कारयितुं ब्राह्मणानां जातिं परिहारं ददाति अर्हत--- व --- न--- गिया (?)'[७४]

इसलिए जिस प्रकार ब्राह्मणों को दान देने के उल्लेख से राजा खारवेल ब्राह्मण सिद्ध नहीं होता, वैसे ही यदि शिलालेख में श्वेताम्बर-साधुओं को वस्त्रादिदान का उल्लेख होता, तो वह श्वेताम्बर-मतानुयायी सिद्ध नहीं हो सकता था।

श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल ने शिलालेख के पूर्वोक्त १४ वें वाक्य से जो यह अर्थ ग्रहण किया है कि राजा खारवेल ने श्वेताम्बर साधुओं को रेशमी और श्वेतवस्त्र दान किये थे, उसके आधार पर मुनि पुण्यविजय जी ने 'कायनिसीदयाय यापञवकेहि' शब्दों से मिलते-जुलते शब्दों की श्वेताम्बरग्रन्थों में उपस्थिति तथा प्रकारान्तर से दिगम्बरग्रन्थों में अनुपस्थिति बतलाकर मौनरूप से यह सिद्ध करना चाहा है कि राजा खारवेल श्वेताम्बर था। इस पर बाबू छोटेलाल जी जैन (कलकत्ता) ने अपने एक लेख में आपत्ति की है।[७५] उसका समाधान करते हुए 'अनेकान्त' के सम्पादक पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार लिखते हैं—

''खारवेल महाराज के दिगम्बर होने पर भी उनके द्वारा अपने श्वेताम्बर भाइयों का सत्कारित होना कोई अनोखी बात नहीं कहा जा सकता, खासकर उस जमाने में, जब कि परस्पर के मतभेद ने आजकल जैसा कोई उग्ररूप धारण नहीं किया था और ऐसी हालत में जब कि खारवेल खुद एक उदारहृदय सम्राट् थे, सर्वमतों के प्रति आदरभाव रखते थे, उन्होंने ब्राह्मणों तक का सत्कार किया है और वे अपनी पैंतीस लाख प्रजा को अनुरंजित (प्रसन्न) रखने का शिलालेख में ही उल्लेख करते हैं। अतः इस सत्कारमात्र से, यदि वह पाठ के आपन्न न होने पर ठीक भी हो, तो खारवेल के दिगम्बर होने में कोई बाधा नहीं आती, जिसकी किसी को चिन्ता करनी पड़े।''[७६]

६

श्वेताम्बर सिद्ध करने का अन्य कपट-प्रयास

राजा खारवेल को श्वेताम्बर सिद्ध करने का एक अन्य प्रयास भी किया गया है, जिसका विवरण जानना अत्यन्त रोचक है। उसका घटनाक्रम यथावत् प्रस्तुत किया

---

७४. चन्द्रकान्तबाली शास्त्री : खारवेलप्रशस्ति : पुनर्मूल्यांकन / पृ. ११।
७५. 'महाराज खारवेल'/ 'अनेकान्त' वर्ष १ / किरण ५ / पृष्ठ २८४-२८८।
७६. सम्पादकीय पादटिप्पणी ('महाराज खारवेल' : बाबू छोटेलाल जी जैन, कलकत्ता/ 'अनेकान्त' वर्ष १ / किरण ५ / पृष्ठ २८४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जा रहा है। श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने आज से ७५ वर्ष पूर्व (वीर नि० सं० २४५६=ई० सन् १९३० में) 'अनेकान्त' में 'राजा खारवेल और उसका वंश' शीर्षक से लेख प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने किसी 'हिमवन्त थेरावली' नामक पुस्तक के आधार पर खारवेल को चेदिवंश की जगह चेटवंश में उत्पन्न बतलाकर श्वेताम्बर सिद्ध करने की चेष्टा की थी। इस पर बाबू कामताप्रसाद जी जैन ने 'अनेकान्त' में लेख लिखकर कड़ी आपत्ति जतलाई थी और 'हिमवन्त थेरावली' को जाली घोषित किया था। सम्पादक पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने बाबू जी के लेख पर कई प्रतिकूल टिप्पणियाँ की थीं, तथापि 'हिमवन्त थेरावली' की प्रामणिकता के विषय में उन्हें भी सन्देह हो गया था, फलस्वरूप उन्होंने उसकी मूल प्रति प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। किन्तु बहुत दिनों तक वह उन्हें प्राप्त न हो सकी। अन्ततः वह श्वेताम्बर मुनि श्री जिनविजय जी को प्राप्त हो गई और उन्होंने पाया कि उसमें खारवेल के वंश आदि के विषय में दिया गया विवरण कल्पित (जाली) है। इसकी सूचना उन्होंने पत्र लिखकर पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार को दी। माननीय काशीप्रसाद जी जायसवाल ने भी इस प्रकार का समाचार मुख्तार जी के पास प्रकाशनार्थ भेजा। मुख्तार जी ने इन सभी को 'अनेकान्त' में प्रकाशित किया है। ये सभी लेख एवं पत्र आगे उद्धृत किये जा रहे हैं, ताकि इस तथ्य से वर्तमान पीढ़ी भी अवगत हो जाय, जिससे उक्त 'हिमवन्त थेरावली' के आधार पर कोई पुनः वैसा छल करके उसे गुमराह न कर सके।

६.१. प्रथम लेख

(**ज्ञातव्य**–इस लेख में दी गईं पादटिप्पणियाँ इसी लेख के लेखक की तथा कतिपय 'अनेकान्त' के सम्पादक पं० जुगलकिशोर मुख्तार की हैं। पादटिप्पणी के अन्त में 'लेखक' और 'सम्पादक' शब्द से इसका संकेत कर दिया गया है।)

राजा खारवेल और उसका वंश[७७]

लेखक : श्री० मुनि कल्याणविजय जी

"पाटलिपुत्रीय मौर्यराज्य-शाखा को पुष्यमित्र तक पहुँचाने के बाद 'हिमवंत-थेरावली'—कार ने कलिंगदेश के राजवंश का वर्णन दिया है। हाथीगुफा के लेख से कलिंगचक्रवर्ती खारवेल का तो थोड़ा-बहुत परिचय विद्वानों को अवश्य मिला है, पर उसके वंश और उसकी संतति के विषय में अभी तक कुछ भी प्रामाणिक निर्णय

---

७७. 'अनेकान्त' वर्ष १ / किरण ४ / फाल्गुन, वीर नि० सं० २४५६ / पृ. २२६-२२९।

नहीं हुआ था। हाथीगुफा-लेख के "चेतवसवधनस' इस उल्लेख से कोई-कोई विद्वान् खारवेल को 'चैत्रवंशीय' समझते थे, तब कोई उसे 'चेदिवंश' का राजा कहते थे। हमारे प्रस्तुत थेरावली-कार ने इस विषय को बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। थेरावली के लेखानुसार खारवेल न तो 'चैत्रवंश्य' था और न 'चेदिवंश्य', किन्तु वह 'चेटवंश्य', था। क्योंकि वह वैशाली के प्रसिद्ध राजा 'चेटक' के पुत्र कलिंगराज 'शोभनराय' की वंश-परम्परा में जन्मा था।

"अजातशुत्र के साथ की लड़ाई में चेटक के मरने पर उसका पुत्र शोभनराय वहाँ से भाग कर किस प्रकार कलिंगराजा के पास गया और वह कलिंग का राजा हुआ इत्यादि वृत्तान्त थेरावली के शब्दों में नीचे लिखे देते हैं, विद्वान् गण देखेंगे कि कैसी अपूर्व हकीकत है।

"वैशाली का राजा चेटक तीर्थंकर महावीर का उत्कृष्ट श्रमणोपासक था। चम्पानगरी का अधिपति राजा कोणिक, जो कि चेटक का भानजा था (अन्य श्वेताम्बरजैन-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में कोणिक को चेटक का दोहिता लिखा है) वैशाली पर चढ़ आया और लड़ाई में चेटक को हरा दिया। लड़ाई में हारने के बाद अन्नजल का त्याग कर राजा चेटक स्वर्गवासी हुआ।

"चेटक का शोभनराय नाम का एक पुत्र वहाँ (वैशाली नगरी) से भागकर अपने श्वशुर कलिंगाधिपति 'सुलोचन' की शरण में गया। सुलोचन के पुत्र नहीं था, इसलिये अपने दामाद शोभनराय को कलिंगदेश का राज्यासन देकर वह परलोकवासी हुआ।

"भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद अठारह वर्ष बीते, तब शोभनराय का कलिंग की राजधानी कनकपुर[७८] में राज्याभिषेक हुआ। शोभनराय जैनधर्म का उपासक था, वह कलिंग देश में तीर्थस्वरूप कुमारपर्वत पर यात्रा करके उत्कृष्ट श्रावक बन गया था।

"शोभनराय के वंश में, पांचवीं पीढ़ी में, 'चण्डराय' नामक राजा हुआ, जो महावीर के निर्वाण से १४९ वर्ष बीतने पर कलिंग के राज्यासन पर बैठा था।

"चण्डराय के समय में पाटलिपुत्र नगर में आठवाँ नन्दराजा राज्य करता था, जो मिथ्याधर्मी और अतिलोभी था। वह कलिंगदेश को नष्ट-भ्रष्ट करके तीर्थस्वरूप कुमरगिरि पर श्रेणिक के बनवाये हुए जिनमन्दिर को तोड़ उसमें रही हुई ऋषभदेव की सुवर्णमयी प्रतिमा को उठाकर पाटलिपुत्र में ले आया।

---

७८. "अन्य जैन शास्त्रों में भी "कंचणपुरं कलिंगा" इत्यादि उल्लेखों में कलिंग देश की राजधानी का नाम 'कञ्चनपुर' (कनकपुर) ही लिखा है।" लेखक ।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"इसके बाद शोभनराय की ८वीं पीढ़ी में क्षेमराज[७९] नामक कलिंग का राजा हुआ, वीरनिर्वाण के बाद २२७ (दो सौ सत्ताईस) वर्ष पूरे हुए, तब कलिंग के राज्यासन पर क्षेमराज का अभिषेक हुआ और निर्वाण से २३९ (दो सौ उनतालीस) वर्ष बीते, तब मगधाधिपति अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई की[८०] और वहाँ के राजा क्षेमराज को अपनी आज्ञा मनाकर वहाँ पर उसने अपना गुप्त संवत्सर चलाया।[८१]

"महावीर निर्वाण से २७५ (दो सौ पचहत्तर) वर्ष के बाद क्षेमराज का पुत्र बुट्टराज[८२] कलिंगदेश का राजा हुआ, बुट्टराज जैनधर्म का परम उपासक था, उसने कुमरगिरि और कुमारीगिरि नामक[८३] दो पर्वतों पर श्रमण और निर्ग्रन्थियों के चातुर्मास्य करने योग्य ११ ग्यारह गुफायें खुदवाई थीं।

"भगवान् महावीर के निर्वाण को ३०० (तीन सौ) वर्ष पूरे हुये तब बुट्टराय का पुत्र भिक्खुराय कलिंग का राजा हुआ। भिक्खुराय के नीचे लिखे तीन नाम कहे जाते हैं—निर्ग्रन्थ भिक्षुओं की भक्ति करनेवाला होने से उसका एक नाम भिक्खुराय था। पूर्वपरम्परागत महामेघ नाम का हाथी उसका वाहन होने से उसका दूसरा नाम

---

७९. "हाथीगुफावाले खारवेल के शिलालेख में भी पंक्ति १६वीं में 'खेमराजा स' इस प्रकार खारवेल के पूर्वज के तौर से क्षेमराज का नामोल्लेख किया है।" लेखक।

८०. "कलिंग पर चढ़ाई करने का जिकर अशोक के शिलालेख में भी है, पर वहाँ पर अशोक के राज्याभिषेक के आठवें वर्ष के बाद कलिंगविजय करना लिखा है। राज्य प्राप्ति के बाद ३ या ४ वर्ष पीछे अशोक का राज्याभिषेक हुआ मान लेने पर कलिंग का युद्ध अशोक के राज्य के १२-१३ वें वर्ष में आयेगा। थेरावली में अशोक की राज्यप्राप्ति निर्वाण से २०९ वर्ष के बाद लिखी है, अर्थात् २१० में इसे राज्याधिकार मिला और २३९ में कलिंग विजय किया। इस हिसाब से कलिंग-विजयवाली घटना अशोक के राज्य के ३० वें वर्ष के अन्त में आती है, जो कि शिलालेख से मेल नहीं खाती।" लेखक।

८१. "अशोक के गुप्तसंवत्सर चलाने की बात ठीक नहीं जँचती। मालूम होता है, थेरावली-लेखक ने अपने समय में प्रचलित गुप्त राजाओं के चलाये गुप्तसंवत् को अशोक का चलाया हुआ मान लेने का धोखा खाया है। इसी उल्लेख से इसकी अतिप्राचीनता के सम्बन्ध में भी शंका पैदा होती है।" लेखक।

८२. "बुट्टराज का भी खारवेल के हाथीगुफावाले लेख में 'वढराजा स' इस प्रकार का उल्लेख है।"

८३. "उड़ीसा प्रान्त में भुवनेश्वर के निकट के 'खण्डगिरि' और 'उदयगिरि' पर्वत ही विक्रम की १० वीं तथा ११ वीं शताब्दी तक क्रमशः 'कुमरगिरि' और 'कुमारीगिरि' कहलाते थे।" लेखक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

'महामेघवाहन' था। उसकी राजधानी समुद्र के किनारे पर होने से उसका तीसरा नाम 'खारवेलाधिपति' था।[८४]

''भिक्षुराज अतिशय पराक्रमी और अपनी हाथी आदि की सेना से पृथवीमण्डल का विजेता था, उसने मगध देश के राजा पुष्यमित्र[८५] को पराजित करके अपनी आज्ञा मनाई, पहिले नन्दराजा ऋषभदेव की जिस प्रतिमा को उठा कर ले गया था, उसे वह पाटलिपुत्र नगर से वापिस अपनी राजधानी में ले गया[८६] और कुमरगिरि तीर्थ में श्रेणिक के बनवाये हुए जिन-मन्दिर का पुनरुद्धार करके आर्य सुहस्ती के शिष्य सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध नाम के स्थविरों के हाथ से उसे फिर प्रतिष्ठित कराकर उस में स्थापित की।

''पहिले जो बारह वर्ष तक दुष्काल पड़ा था, उसमें आर्यमहागिरि और आर्यसुहस्ती के अनेक शिष्य शुद्ध आहार न मिलने के कारण कुमरगिरि नामक तीर्थ में अनशन करके शरीर छोड़ चुके थे, उसी दुष्काल के प्रभाव से तीर्थंकरों के गणधरों द्वारा प्ररूपित बहुतेरे सिद्धान्त भी नष्टप्राय हो गये थे, यह जानकर भिक्खुराय ने जैनसिद्धान्तों का संग्रह और जैनधर्म का विस्तार करने के वास्ते सम्प्रति राजा की तरह श्रमण निर्ग्रन्थ तथा निर्ग्रन्थियों की एक सभा वहीं कुमारी पर्वत नामक तीर्थ पर इकट्ठी की, जिसमें आर्य महागिरि जी की परम्परा के बलिस्सह, बोधिलिंग, देवाचार्य, धर्मसेनाचार्य, नक्षत्राचार्य आदिक २०० (दो सौ) जिनकल्प की तुलना करनेवाले जिनकल्पी साधु तथा आर्य सुस्थित, आर्य सुप्रतिबुद्ध, उमास्वाति,[८७] श्यामाचार्य प्रभृति ३०० (तीन सौ) स्थविरकल्पी निर्ग्रन्थ उस सभा में आये। आर्या पोइणी आदिक ३०० (तीन सौ) निर्ग्रन्थी साध्वियाँ भी वहाँ इकट्ठी हुई थीं। भिक्खुराय, सीवंद, चूर्णक, सेलक आदि ७०० (सात सौ) श्रमणोपासक और भिक्खुराय की स्त्री पूर्णमित्रा आदि सात सौ श्राविकायें, ये सब उस सभा में उपस्थित थे।

---

८४. ''हाथीगुफावाले लेख में भी 'भिखुराजा', 'महामेघवाहन' और 'खारवेलसिरि' इन तीनों नामों का प्रयोग खारवेल के लिये हुआ है।'' लेखक।

८५. ''खारवेल के शिलालेख में भी मगध के राजा वृहस्पतिमित्र को जीतने का उल्लेख है।'' लेखक।

८६. ''नन्दराजा द्वारा ले जाई गई जिनमूर्ति को वापिस कलिंग में ले जाने का हाथीगुफा-लेख में नीचे लिखे अनुसार स्पष्ट उल्लेख है—''**नन्दराजनीतं च कालिंगजिनं संनिवेसं --- गहरतनान पडिहारेहि अंगमागध-वसुं च नेयाति (।)**'' (हाथीगुफालेख पंक्ति १२वीं, बिहार-ओरिसा जर्नल, वाल्युम ४, भाग ४)।'' लेखक।

८७. ''तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता 'उमास्वाति' भी भिक्खुराय खारवेल की इस सभा में उपस्थित थे, यह बात बहुत ही संदिग्ध तथा आपत्ति के योग्य जान पड़ती है।'' सम्पादक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"पुत्र, पौत्र और रानियों के परिवार से सुशोभित भिक्खुराय ने सब निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को नमस्कार करके कहा, "हे महानुभावो! अब आप वर्धमान-तीर्थंकर-प्ररूपित जैनधर्म की उन्नति और विस्तार करने के लिये सर्वशक्ति से उद्यमवन्त हो जायँ।"

"भिक्खुराय के उपर्युक्त प्रस्ताव पर सर्व निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों ने अपनी सम्मति प्रकट की और भिक्षुराज से पूजित, सत्कृत और सम्मानित निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ मगध, मधुरा, वंग, आदि देशों में तीर्थंकरप्रणीत धर्म की उन्नति के लिये निकल पड़े।

"उसके बाद भिक्खुराय ने कुमरगिरि और कुमारीगिरि नामक पर्वतों पर जिनप्रतिमाओं से शोभित अनेक गुफायें खुदवाईं, वहाँ जिनकल्प की तुलना करनेवाले निर्ग्रन्थ वर्षाकाल में कुमारीपर्वत की गुफाओं में रहते और जो स्थविरकल्पी निर्ग्रन्थ होते, वे कुमरपर्वत की गुफाओं में वर्षाकाल में रहते, इस प्रकार भिक्खुराय ने निर्ग्रन्थों के रहने के वास्ते विभिन्न व्यवस्था कर दी थी।

"उपर्युक्त सर्व व्यवस्था से कृतार्थ हुए भिक्खुराय ने बलिस्सह, उमास्वाति, श्यामाचार्यादिक स्थविरों को नमस्कार करके जिनागमों में मुकुटतुल्य दृष्टिवाद-अंग का संग्रह करने के लिये प्रार्थना की।

"भिक्खुराय की प्रेरणा से पूर्वोक्त स्थविर आचार्यों ने अवशिष्ट दृष्टिवाद को श्रमण समुदाय से थोड़ा-थोड़ा एकत्र कर भोजपत्र, ताड़पत्र और बल्कल पर अक्षरों से लिपिबद्ध करके भिक्खुराय के मनोरथ पूर्ण किये और इस प्रकार करके वे आर्य सुधर्म-रचित द्वादशांगी के संरक्षक हुए।

"उसी प्रसंग पर श्यामाचार्य ने निर्ग्रन्थ साधु-साध्वियों के सुखबोधार्थ 'पन्नवणा सूत्र' की रचना की।[८८]

"स्थविर श्री उमास्वाति जी ने उसी उद्देश से निर्युक्ति-सहित 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचना की।[८९]

"स्थविर आर्य बलिस्सह ने विद्याप्रवादपूर्व में से 'अंगविद्या' आदि शास्त्रों की रचना की।[९०]

---

८८. "श्यामाचार्यकृत 'पन्नवणा' सूत्र अब तक विद्यमान है।" लेखक।

८९. "उमास्वातिकृत 'तत्त्वार्थसूत्र' और इसका स्वोपज्ञ 'भाष्य' अभी तक विद्यमान हैं। यहाँ पर उल्लिखित 'निर्युक्ति' शब्द संभवतः इस भाष्य के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है।" लेखक।

९०. "अंगविद्या प्रकीर्णक भी हाल तक मौजूद है। कोई ९००० (नौ हजार) श्लोक प्रमाण का यह प्राकृत गद्य-पद्य में लिखा हुआ 'सामुद्रिक विद्या' का ग्रन्थ है।" लेखक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"इस प्रकार जिनशासन की उन्नति करनेवाला भिक्खुराय अनेकविध धर्मकार्य करके महावीर निर्वाण से ३३० (तीन सौ तीस) वर्षों के बाद स्वर्गवासी हुआ।

"भिक्खुराय के बाद उसका पुत्र 'वक्रराय' कलिंग का अधिपति हुआ।[९१] वक्रराय भी जैनधर्म का अनुयायी और उन्नति करनेवाला था। धर्माराधन और समाधि के साथ यह वीर निर्वाण से ३६२ (तीन सौ बासठ) वर्ष के बाद स्वर्गवासी हुआ। वक्रराय के बाद उसका पुत्र 'विदुहराय' कलिंग देश का अधिपति हुआ।[९२]

"विदुहराय ने भी एकाग्रचित्त से जैनधर्म की आराधना की। निर्ग्रन्थ-समूह से प्रशंसित यह राजा महावीरनिर्वाण से ३९५ (तीन सै पंचानवे) वर्ष के बाद स्वर्गवासी हुआ।"[९३] **(लेख समाप्त)**

६.२. **द्वितीय लेख**

(**ज्ञातव्य**—इस लेख में दी गयीं पादटिप्पणियाँ इसी लेख के लेखक की तथा कतिपय 'अनेकान्त' के सम्पादक पं० जुगलकिशोर मुख्तार की हैं। पादटिप्पणी के अन्त में 'लेखक' और 'सम्पादक' शब्द से इसका संकेत कर दिया गया है।)

राजा खारवेल और उसका वंश[९४]

लेखक : श्री० बाबू कामताप्रसाद जी

"अनेकान्त' की ४थी किरण (पृष्ठ २२६-२२९) में उक्त शीर्षक के नीचे मुनि कल्याणविजय जी (श्वे०) ने राजा खारवेल के वंश का कुछ परिचय कराया है।

---

९१. "कलिंग देश के उदयगिरि पर्वत की मानिकपुर गुफा के एक द्वार पर खुदा हुआ 'वक्रदेव' के नाम का शिलालेख मिला है, जो इसी 'वक्रराय' का है। लेख नीचे दिया जाता है—"**वेरस महाराजस कलिंगाधिपतिनो महामेघवाहन 'वकदेपसिरि' नो लेणं**" (मुनि जिन-विजयसंपादित प्राचीन जैनलेखसंग्रह / भा.१/ पृ.४९)।" लेखक।

९२. "उदयगिरि की मञ्चपुरी गुफा के सातवें कमरे में 'विदुराय' के नाम का एक छोटा लेख है, उसमें लिखा है कि यह 'लयन' (गुफा) कुमार विदुराव का है। लेख के मूल शब्द नीचे दिये जाते हैं—'**कुमार वदुरवस लेनं**' (एपिग्राफिका इंडिका जिल्द १३)।" लेखक।

९३. "कुछ महीनों पहिले 'हिमवंत थेरावली' नामक एक प्राकृत-भाषामयी प्राचीन स्थविरावली का गुजराती अनुवाद मेरे देखने में आया था, जिसका परिचय मैंने अपने (अप्रकाशित) निबन्ध 'वीर संवत् और जैन कालगणना' के अन्त में परिशिष्ट के तौर पर दिया है, उसी परिशिष्ट में 'राजा खारवेल और उसका वंश' यह एक प्रकरण है।" लेखक।

९४. 'अनेकान्त'/ वर्ष १ / किरण ५ / चैत्र, वीर नि.सं.२४५६/ पृ. २९७-३०१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उसमें मान्य लेखक ने हाथीगुफा के लेख में आये हुए 'चेतवसवधनस' (अब इस वाक्य को मि० जायसवाल ने 'चेतिराजवसवधनेन' पढ़ा है और उन्हें 'चेति' अथवा 'चेदि' वंशज बताया है) वाक्य से जो विद्वान् उन्हें 'चैत्र' अथवा 'चेदि'-वंशज बतलाते हैं, उनसे अहसमतता प्रकट की है, क्योंकि मुनि जी को कहीं से एक 'हिमवंत-थेरावली' नामक श्वेताम्बर-पट्टावली मिल गई है और उस में राजा खारवेल को लिच्छिविसंघ के राष्ट्रपति राजा चेटक का वंशज प्रगट किया है। इस थेरावली की प्रामाणिकता और प्राचीनता के विषय में न तो मुनि जी ने ही कुछ लिखा है और न संपादक महोदय ने ही कुछ छानबीन की है।[९५] इस साहित्यिक डाकेजनी के जमाने में इस प्रकार एक शिलालेख की सब बातों से मेल खानेवाले साहित्य का यकायक निकल आना, कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। सो भी उस दशा में जब कि श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों में पवित्र तीर्थों के नाम पर झगड़े चल रहे हैं और श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की ओर से पहले भी जाली दस्तावेजें पेश की जा चुकी हैं, जैसे कि शिखरजी-केस के 'जजमेन्ट' से प्रकट है।[९६] अत एव उक्त थेरावली के परिचय को बिलकुल गुप्त रखते हुए उसकी कुछ बातों को बिना कोई विशेष शोध-परिशोध किये ही एकदम प्रकट कर देना कुछ ठीक नहीं जँचता।[९७] वह थेरावली किस आचार्य ने किस जमाने में लिखी, उसकी प्रतियाँ कहाँ-कहाँ किस रूप में मिलती हैं और ग्रन्थ के जाली न होने में कोई सन्देह तो नहीं, ये सब बातें जब तक प्रकट न हों, तब तक इस थेरावली पर विश्वास किया जाना कठिन है। निम्न बातों को देखते हुये तो यह थेरावली जाली प्रतीत होती है अथवा उस पर जाली होने का बहुत बड़ा सन्देह पैदा होता है—

"१. थेरावली में राजा चेटक के वंश का जो परिचय दिया है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। कम से कम दिगम्बरजैन-शास्त्रों में उसका उल्लेख नहीं है और जहाँ तक मुझे श्वेताम्बरशास्त्रों का परिचय है, मैं कहने को बाध्य हूँ कि उनमें भी ऐसा वर्णन शायद ही मिले।

---

९५. "छानबीन चल रही है। नतीजा निकलने पर प्रकट किया जायगा। अभी तक मूल ग्रन्थ या उसका अनुवाद भी प्राप्त नहीं हो सका।" सम्पादक।

९६. "They (Fermans) will appear to be matlabi on the face of them and to have been got up for the purpose of disputes., (P.H.Judg., p. 32)" लेखक।

९७. "एक विद्वान् को जो बातें जिस रूप में कहीं से प्राप्त हों, उन्हें उस रूप में विशेष अनुसंधान को उत्तेजन देने के लिये प्रकट कर देना तो कुछ आपत्ति के योग्य मालूम नहीं होता। विशेष जाँच-पड़ताल अधिक समय तथा साधना-सामग्री की अपेक्षा रखती है और वह प्रायः बाद को अनेक विद्वानों के सहयोग से हो पाती है।" सम्पादक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"२. थेरावली का जो अंश प्रकट हुआ है, उससे मालूम होता है कि उसमें तत्कालीन भारत के अन्य राज्यों का भी पूर्ण वर्णन होगा। यदि यह बात है, तो बिना किसी अधिक विलम्ब के उक्त थेरावली को पूर्णतः प्रकट करना चाहिए। फिर भी जो अंश प्रकट हुआ है उसका सामञ्जस्य केवल जैनशास्त्रों से ही ठीक नहीं बैठता, बल्कि जैनेतर साहित्य से भी वह बाधित है, जैसा कि आगे चल कर प्रकट होगा। और यदि उसमें उक्त राजवंश के वर्णन के अतिरिक्त अन्य किसी राजवंश का वर्णन नहीं है, तो उसे सहसा स्वीकार कर लेना सुगम नहीं है।

"३. राजा चेटक के नाम की अपेक्षा किसी 'चेट' वंश का अस्तित्व इससे पहले के किसी साहित्यग्रंथ या शिलालेख से प्रगट नहीं है। और चेटक का वंश 'लिच्छिवि' प्रसिद्ध था, जो उत्तर भारत में गुप्तकाल तक विद्यमान रहा, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह लिच्छिवि-वंशीय कुमारदेवी से हुआ था।[९८] कौटिल्य ने सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के जमाने तक लिच्छिवि-वंशजों को उत्तर भारत में राज्याधिकारी लिखा है।[९९] और इतिहास से यह पता चलता है कि अजातशत्रु के द्वारा परास्त किये जाने पर भी लिच्छिवि अपने राजसंघ के अस्तित्व को बनाये रख सके थे।[१००] इसके साथ ही इतिहास और स्वयं श्वेताम्बर-ग्रन्थों से यह सिद्ध है कि चेटक कोई परम्परागत राजा नहीं था।[१००] विदेहदेश में तब साम्राज्यवाद के स्थान पर एक प्रकार का प्रजातंत्रवाद प्रचलित था। चेटक उस राष्ट्र के राष्ट्रपति नियुक्त थे।[१००] अतः यह हार उनकी निजी न होकर राष्ट्र की थी और राष्ट्र का प्रत्येक प्रतिनिधि तब 'राजा' कहलाता था, यह बात भी स्पष्ट है। इस हालत में चेटक के पुत्र का भाग कर कलिंग पहुँचना और वहाँ पर नया राज्य और वंश स्थापित करना बाधित है। श्वेताम्बरीय शास्त्र 'निर्यावली' और 'भगवती सूत्र' में अजातशत्रु और चेटक की उक्त लड़ाई का वर्णन है। उसमें साफ लिखा है कि 'चेटक ने इस आपत्ति को आया जान कर नौ मल्लिक, नौ लिच्छिवि और ४८ काशी-कौशल के गणराजों (गणरायालों) को तैयार किया।'[१०१] इससे स्पष्ट है कि इन गणराजों का नेतृत्व राजा चेटक ग्रहण किये हुए थे।

---

९८. भारत के प्राचीन राजवंश / भा.२ / पृ. २४२।

९९. **"लिच्छिविक-वृज्जिक-मल्लक-मद्रक-कुकुर-कुरु-पाञ्चालादयो-राजशब्दोपजीविनः संघाः" इति कौटिल्यः।**

१००. सम क्षत्री क्लैन्स इन ऐन्शियेन्ट इण्डिया / पृ. १३५-१३६।

१०१. भगवती ७-९ / इण्डियन ऐन्टीक्वेरी / भा.२१/ पृ.२१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"४. चेटक का लिच्छिवि वंश पहले से ही बहुत प्रख्यात था और उस समय अन्य क्षत्रिय लोग उनसे विवाह-सम्बन्ध करने में अपना अहो-भाग्य समझते थे।[१०२] इस दशा में यदि शोभनराय भाग कर कलिंग गया होता, तो उसने अपने इस सर्वमान्य वंश का नाम कदापि न पलटा होता और उसे अपने उस पिता के नाम में परिवर्तित न किया होता, जो कोई बहादुरी न दिखा कर उलटा मगधराज के हाथ अपना राज्य गँवा बैठा था।

"५. दिगम्बर जैनशास्त्र 'उत्तरपुराण' में राजा चेटक के दस पुत्र बतलाये हैं और उनके नाम ये दिये हैं—धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्तवाक्, सिंहभद्र सुकुंभोज, अकंपन, सुपतंग, प्रभंजन और प्रभास (पृ. ६३४)। इसमें शोभनराय नामक कोई पुत्र नहीं है।

"६. दिगम्बरजैनग्रन्थ 'हरिवंशपुराण' से प्रकट है कि भगवान् महावीर के समय में कलिंग का राजा जितशत्रु था,[१०३] सुलोचन नहीं था। अतः अन्य श्वेताम्बर और जैनेतर साहित्य से इस 'सुलोचन' का अस्तित्व जब तक प्रमाणित न हो जाय, तब तक उसको तत्कालीन कलिंगाधिपति स्वीकार करना कठिन है।

"७. उपर्युक्त प्रकार से इस थेरावली के प्रकट अंश के प्रारंभिक भाग की अनैतिहासिकता को देखते हुये, उसमें क्षेमराज, बुट्टराज, कुमारीगिरि आदि ऐतिहासिक पुरुषों तथा वार्ता का उल्लेख मिलना, उसके संदिग्ध रूप को असंदिग्ध नहीं बना देता। क्या यह संभव नहीं है कि खारवेल के अति प्राचीन शिलालेख को श्वेताम्बरसाहित्य से पोषण दिला कर उसे श्वेताम्बरीय प्रकट करने के लिए ही किसी ने इस थेरावली की रचना कर डाली हो और वही रचना किसी शास्त्रभण्डार से उक्त मुनिजी को मिल गई हो?[१०४] इस बात को संभवनीय हम इस कारण और मानते हैं कि इसमें शिलालेख के पिछले रूप के अनुसार कई उल्लेख हैं, परंतु अब विद्वानों ने उन अंशों को दूसरे रूप में पढ़ा है।[१०५] जैसे कि थेरावली में 'खारवेलाधिपति' नाम मात्र एक उपाधि रूप में है, परंतु अब वह खास नाम प्रकट हुआ है।[१०६] शिलालेख में खारवेल ने एक वृहस्पतिमित्र राजा को परास्त किया लिखा है। इस वृहस्पतिमित्र को ही

---

१०२. भगवान महावीर / पृ. ५७।

१०३. भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध / पृ. ४३।

१०४. "मुनि जी को अभी तक मूल ग्रन्थ की प्राप्ति नहीं हुई। उन्होंने उसके गुजराती अनुवाद पर से ही वह लेख लिखा है, जिसकी सूचना लेख के अन्तिम फुटनोट में पाई जाती है, और अपने १९ फरवरी के पत्र में वे मुझे भी लिख रहे हैं। वह अनुवाद 'अंचलगच्छनी म्होटी पट्टावली' में छपा है।" सम्पादक।

१०५. "उनका वह हाल का पढ़ना ही ठीक है, यह अभी कैसे मान लिया जाय?" सम्पादक।

१०६. JBORS. IV, p. 434.

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मि० जायसवाल पुष्यमित्र मानते हैं।[१०७] थेरावली में स्पष्टतः पुष्यमित्र का नामोल्लेख कर दिया गया है। किन्तु अब विद्वान् वृहस्पतिमित्र को पुष्यमित्र मानने के लिए तैयार नहीं हैं।[१०८] इसी प्रकार दृष्टिवाद अंग के पुनरुत्थान किये जाने की बात भी अब असंगत है, क्योंकि कोई-कोई विद्वान् उसे विपाकसूत्र ग्रन्थ बतलाते हैं, जो दिगम्बरमतानुसार विलुप्त है और श्वेताम्बरों में मिलता है।[१०९]

"८. थेरावली द्वारा प्रकट किया गया है कि कुमारगिरि पर खारवेल ने आर्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध नामक स्थविरों के हाथ से जिनमन्दिर का पुनरुद्धार कराके प्रतिष्ठा कराई और उसमें जिन की मूर्ति स्थापित कराई। साथ ही, वीर निर्वाण से ३३० वर्षों के बाद ये सब कार्य करके खारवेल को स्वर्गवासी हुआ लिखा है। किन्तु श्वेताम्बरीय तपागच्छ की 'वृद्ध पट्टावली' से यह बात बाधित है। उसके अनुसार उक्त स्थविरद्वय का समय वीर निर्वाण से ३७२ वर्ष बाद का है।[११०] इस हालत में खारवेल का उनसे साक्षात् होना कठिन है।[१११] अतः हो सकता है कि यह बात मात्र इस गर्ज से लिखी गई हो कि उक्त तीर्थ को किसी समय श्वेताम्बरों का सिद्ध किया जा सके।

"९. इसी प्रकार खारवेल द्वारा एकत्र की गई सभा में देवाचार्य, बुद्धिलिंगाचार्य, धर्मसेनाचार्य तथा नक्षत्राचार्य का सम्मिलित होना भी असंभव है, क्योंकि ये आचार्य कोई श्वेताम्बराचार्य तो थे नहीं, श्वे० पट्टावली में तो ये नाम देखने को भी नहीं मिलते। हाँ, दिगम्बर पट्टावली में ये नाम अवश्य पाये जाते हैं। किन्तु यहाँ ये सब आचार्य समकालीन प्रकट नहीं किये गये हैं। इनका समय एक दूसरे से नितान्त भिन्न है। धर्मसेनाचार्य वीर नि० सं० ३२९ और नक्षत्राचार्य ३४५ में हुए बतलाये गये हैं।[११२] अतः उक्त थेरावली के अनुसार दिगम्बराचार्य धर्मसेनाचार्य ही केवल उस सभा में उपस्थित हुए कहे जा सकते हैं।[११३] इन सब आचार्यों को थेरावली भी दिगम्बर

---

१०७. Ibid. p. 442.

१०८. Indian Historical Quarterly , Vol. V, p. 587-613.

१०९. Ibid. p. 592.

११०. जैन साहित्य संशोधक / भाग १/ परिशिष्ट पृ. ९।

१११. "भले ही कठिन जान पड़े, किन्तु असंभव नहीं है, क्योंकि उक्त ३७२ वर्ष का समय सुस्थित- सूरि के स्वर्गारोहण का समय है। उससे ५०-६० वर्ष पहले उनका मौजूद होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनके गुरु सुहस्ती की आयु तो पट्टावली में ही १०० वर्ष की लिखी है।" सम्पादक।

११२. Indian Antiquary, XX, pp. 345-346.

११३. "यह सब निर्णय ठीक नहीं है, क्योंकि इन आचार्यों के दशपूर्वादि के पाठी होने का समय भिन्न होने पर भी इनका समकालीन होना कोई बाधक मालूम नहीं होता।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

(जिनकल्पी) प्रकट करती है। रही बात सवस्त्र साधुओं की, सो थेरावली में सुस्थित, सुप्रतिबुद्ध, उमास्वाति व श्यामाचार्य प्रभृति बताए हैं। इनमें से पहले दो इस सभा में शामिल नहीं हो सकते, यह हम देख चुके (!)। रहे शेष दो, सो ये भी उक्त सभा में नहीं पहुँच सकते, क्योंकि उमास्वाति इस घटना के कई शताब्दी बाद हुए हैं और श्यामाचार्य उनसे भी पीछे के आचार्य मालूम होते हैं। अतः थेरावली का यह वक्तव्य प्रामाणिक नहीं है।

"इन सब बातों को देखते हुए 'हिमवंत-थेरावली' को एक प्रामाणिक ग्रन्थ मान लेना सत्य का खून करना है और इस हालत में उसमें बताया हुआ खारवेल का वंशपरिचय भी ठीक नहीं माना जा सकता। अतः आइए पाठकगण, अब स्वाधीनरूप में [११४] खारवेलसिरि के वंश का परिचय प्राप्त करें।

"सबसे पहले हाथीगुफावाले उनके शिलालेख को लीजिए। उसमें साफ तौर से उन्हें '**ऐरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराजवसवधनेना**'---**कलि (ङ्) ग अधिपतिना सिरि खारवेलेन**' लिखा है। इसमें प्रयुक्त हुए 'ऐरेन' शब्द का भाव 'ऐल-वंशज' के रूप में और 'ऐर' (आर्य) रूप में भी लिया जाता है।[११५] इनका ऐल-वंशज होना न केवल हिन्दूपुराणों से ही सिद्ध है, बल्कि दिगम्बर जैन हरिवंशपुराण के कथन से भी प्रमाणित है।[११६] हिन्दूपुराणों के अनुसार ई० पू० २१३ के बाद जिन राजवंशों का वर्णन है, उनमें से एक का वर्णन निम्न प्रकार है—[११७]

यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त ज्ञान की प्राप्ति से पहले वे मुनि या आचार्यादि कुछ नहीं थे। बुद्धिलिंग को दशपूर्वज्ञान की प्राप्ति वीरनिर्वाण से २९५ वर्ष बाद हुई और २० वर्ष तक रही बतलाई गई है। उनके बाद देवाचार्य को यह सिद्धि हुई। और खारवेल की राज्यप्राप्ति थेरावलिकार ने वीरनिर्वाण से ३०० वर्ष बाद लिखी है। इससे खारवेल की सभा में इन दोनों आचार्यों की उपस्थिति बाधक नहीं हो सकती और नक्षत्राचार्य भी एकादशांग ज्ञान की प्राप्ति से पहले उस सभा में सम्मिलित हो सकते हैं। लेखक महाशय ने यों ही बिना अच्छी तरह से विचार किये, उनके समय को नितान्त भिन्न बतलाते हुए, उनके सम्मिलित होने को असंभव ठहराया है।" सम्पादक।

११४. "यहाँ 'स्वाधीन' शब्द का प्रयोग बड़ा ही बेढब जान पड़ता है। जिस परिचय के लिये लेखक महाशय खुद शिलालेख के आधुनिक रीडिंग, उसके अर्थों, पुराणों और दूसरे विद्वानों के वचनों का सहारा ले रहे हैं, उसे पाठकों को स्वाधीनरूप में प्राप्त कराना चाहते हैं, यह एक बड़ी ही विचित्र बात है।" सम्पादक।

११५. JBORS., IV, 1434-435.

११६. Ibid., XVIII, 277-279.

११७. Ibid, VI, 480-482.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१. यह कौशल (दक्षिण कौशल) का राजवंश था।

२. यह साधारणतः 'मेघ' (Meghas) (मेघा इति समाख्याताः) नाम से विख्यात था।

३. यह विशेष शक्तिवाला और विद्वान् था, और

४. इसके कुल नौ राजा थे।

"इस वंश का मेघ नाम खारवेल की **मेघवाहन** उपाधि का द्योतक है, यह मि० जायसवाल प्रकट करते हैं। इसका समर्थन एक प्राचीन उड़िया काव्य से होता है, जो 'इंडियन म्यूजियम' में मौजूद है। उसमें लिखा है कि 'कलिंग को मगध के नन्द राजाओं ने जीत लिया था, किन्तु बाद को **ऐर** राजा ने **नंद** राजा को हरा कर उसका उद्धार किया। यह नन्द कट्टर वैदिक-धर्मावलम्बी था, किन्तु ऐर पाखण्डी था। ऐर का विरोध अशोक से भी विशेष था। पहले ऐर की राजधानी दक्षिण कौशल की कौशला नगरी थी, बाद को उन्होंने अपनी राजधानी खण्डगिरि पर बनाई।[११८] इस उल्लेख से भी खारवेल के पूर्वजों का दक्षिण कौशल से आना सिद्ध होता है। और यह बात हिन्दू-पुराणों के उपर्युक्त उल्लेख के अनुकूल है। इसके अतिरिक्त ऐर अर्थ को पुष्ट करनेवाला कोई उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, जैन हरिवंशपुराण से उत्तर कौशल के हरिवंशीय राजा दक्ष के द्वारा खारवेल का **ऐलवंशज** होना प्रकट है और यह भी प्रकट है कि उनके वंशज उत्तर से आकर दक्षिण की ओर विन्ध्याचल पर्वत के पृष्ठ भाग में **चेदिराष्ट्र** बना कर वहाँ शासन करने लगे थे। वह कथा इस प्रकार है—

"हरिवंशीय राजा **दक्ष** का एक **ऐलेय** नाम का पुत्र और **मनोहरी** नाम की सुन्दर कन्या थी। दक्ष मनोहरी पर आसक्त हो गया और उस नीच ने उसे अपनी पत्नी बना लिया। इस कारण रानी **इला** अपने पति से इस दुष्कर्म के कारण रुष्ट हो गई और अपने पुत्र ऐलेय को लेकर दूसरे देश को चली गई। ऐलेय दुर्ग देश में पहुँचा और वहाँ उसने '**इलावर्द्धन**' नामक नगर स्थापित किया। इसके बाद वह **अङ्गदेश** में **ताम्रलिप्ति** नामक नगरी भी स्थापित करने में सफल हुआ। ऐलेय एक राजा बन गया और फिर वह दिग्विजय को निकला। इस दिग्विजय में ऐलेय ने नर्मदातट पर **माहिष्मतीनगरी** की नींव डाली। अन्त में वह दिगम्बर मुनि हो गया और उसका पुत्र **कुणिम** राजा हुआ। कुणिम ने विदर्भदेश में **कुण्डिनपुर** को बसाया। यह भी मुनि हो गया और इसके बाद **पुलोम** राजा हुआ, जिसने **पुलोमपुर** नगर बसाया। इसके

११८. Ibid., IV, 480-482.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उत्तराधिकारी इसके दो पुत्र, **पौलोम** और **चरम** हुये, जिन्होंने **इन्द्रपुर** की नींव डाली। इनकी सन्तान में बहुत राजाओं के बाद, जिनके नाम गिनाना फ़िजूल है, एक राजा **अभिचन्द्र** हुआ। इसने विन्ध्याचल पर्वत के पृष्ठ भाग में **चेदिराष्ट्र** की स्थापना की। इसकी रानी उग्रवंशी **वसुमती** नामक थी।'' (हरिवंशपुराण/सर्ग १७/श्लोक १-३९)।

''इस कथन से राजा **खारवेल** के वंश का ठीक परिचय मिलता है और इसके अनुसार उनकी **ऐर** उपाधि का अर्थ **ऐलवंशज** होना ठीक है। तथापि ऐलवंशज अभिचन्द्र ने ही **चेदिराष्ट्र** की स्थापना की, इसलिये खारवेल का **चेतिराजवसवधेन** होना ठीक ही है, क्योंकि उनके पूर्वज विन्ध्याचल पर्वत के निकटवर्ती महाकौशल से आये थे, और वे चेदिराष्ट्र के उत्तराधिकारी थे। अतः 'हिमवंत-थेरावली' के अनुसार राजा खारवेल का जो वंशपरिचय उपस्थित किया गया है, वह ठीक नहीं है। उसके स्थान पर उक्त प्रकार से जो दिगम्बर जैनपुराण, हिन्दू-पुराण और स्वयं खारवेल के शिलालेख के अनुसार वंशवर्णन किया गया है वह विशेष प्रामाणिक है, अर्थात् उत्तर कौशल के राजपुत्र ऐलेय हरिवंशी की सन्तान चेदिकुल की जो थी, और जो विन्ध्याचल के पास दक्षिण कौशल में आ रही थी, उसी के वंशज खारवेल थे। ता.१७-३-१९३०। **(लेख समाप्त)।**

६.३. उपर्युक्त लेख पर सम्पादकीय नोट[११९]

लेखक : पं० जुगल किशोर मुख्तार
सम्पादक : 'अनेकान्त'

''इस लेख की विचारसरणी, यद्यपि, बहुत कुछ स्खलित जान पड़ती है, सत्य की अपेक्षा साम्प्रदायिकता की रक्षा की ओर वह अधिक झुकी हुई है और इसी से इसमें कितनी ही विवादस्थ-अनिर्णीत बातों अथवा दूसरे विद्वानों के कथनों को, जिन्हें अपने अनुकूल समझा, यों ही, बिना उनकी खुली जाँच किये, एक अटल सत्य के तौर पर मान लिया गया है, और जिन्हें प्रतिकूल समझा, उन्हें या तो पूर्णतया छोड़ दिया गया है और या उनके उतने अंश से ही उपेक्षा धारण की गई है, जो अपने विरुद्ध पड़ता था। और इसका कुछ आभास पाठकों को सम्पादकीय फुटनोटों से भी मिल सकेगा। **फिर भी इस लेख पर से उक्त 'थेरावली' की स्थिति संदिग्ध जरूर हो जाती है, भले ही उसे अभी जाली न कहा जा सके, और इस बात की खास जरूरत जान पड़ती है कि उसे जितना भी शीघ्र हो सके पूर्ण परिचय के साथ प्रकाश में लाया जाय। और इसलिये मुनि जी जैसे इतिहासप्रिय विद्वानों को उसके**

---

११९. 'अनेकान्त' / वर्ष १ / किरण ५ / चैत्र, वीर नि.सं. २४५६ / पृ. ३०२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लिये खास तौर से प्रयत्न करना चाहिए। उसके प्रकाश में आने पर ही उसके सब गुण-दोष खुल सकेंगे और यह भी मालूम हो सकेगा कि वह असली चीज है या नकली और जाली। श्रीयुत बा० काशीप्रसाद जी जायसवाल भी यथार्थ निर्णय के लिये उसकी मूल प्रति को जल्दी देखना चाहते हैं। इस विषय में एक पत्र उनका मुनि जी के नाम भी आया था, जो उन्हें भिजवा दिया गया है।

''इसके सिवाय, मैं अपने पाठकों को इतना और बतला देना चाहता हूँ कि इस लेख के अंत में लेखक महाशय ने हरिवंशपुराण की जिस कथा में प्रयुक्त हुए 'ऐलेय' नाम के आधार पर खारवेल के वंश की कल्पना कर डाली है, वह मुनिसुव्रत भगवान् के तीर्थ की और इस लिये आज से ग्यारह लाख वर्ष से भी अधिक पहले की पुरानी बतलाई जाती है। 'ऐलेय' राजा मुनिसुव्रत भगवान् का प्रपौत्र था और इसलिये हरिवंशी था। उसकी वंशपरम्परा में जितने भी राजाओं का उल्लेख मिलता है, उन सबको हरिवंशी लिखा है, ऐलवंशी या ऐलेयवंशी किसी को भी नहीं लिखा और न इस नाम के वंश का शास्त्रों में कोई उल्लेख ही मिलता है। ऐसी हालत में महज शब्दछल को लिये हुए लेखक महाशय की यह कल्पना एक बड़ी ही विचित्र मालूम होती है, जिसका कहीं से भी कोई समर्थन नहीं होता। जब तक आप प्राचीन साहित्य पर से स्पष्ट रूप में यह सिद्ध न कर दें कि 'ऐल' वंश भी कोई वंश था और राजा खारवेल उसी वंश में हुआ है, तब तक आपकी इस कल्पना का कुछ भी मूल्य मालूम नहीं होता। यह भी सोचने की बात है कि खारवेल यदि ऐलेय की वंशपरम्परा में होनेवाला हरिवंशी होता, तो वह अपने को ऐलवंशी कहने की अपेक्षा हरिवंशी कहने में ही अधिक गौरव मानता, जिस वंश में मुनिसुव्रत और नेमिनाथ जैसे तीर्थंकरों का होना प्रसिद्ध है। और यदि 'ऐलेय' राजा के बाद वंश का नाम बदल गया होता, तो नेमिनाथ भी ऐलवंशी कहलाते, परन्तु ऐसा नहीं है, स्वामी समन्तभद्र जैसे प्राचीन आचार्य भी **हरिवंशकेतुरनवद्यविनयदमतीर्थनायकः** (स्वयंभू-स्तोत्र) जैसे विशेषणों के द्वारा उन्हें हरिवंशी ही प्रकट कर रहे हैं। अतः लेखक की उक्त कल्पना निर्मूल जान पड़ती है।''

६.४. थेरावली-विषयक विशेष सम्पादकीय नोट[१२०]

लेखक : पं० जुगलकिशोर मुख्तार
सम्पादक : 'अनेकान्त'

''पिछले नोट को प्रेस में देने और उसके कम्पोज हो जाने के बाद 'हिमवन्त थेरावली' के गुजराती अनुवाद को अंचल-गच्छ की पट्टावली में प्रकाशित करनेवाले

१२०. 'अनेकान्त'/ वर्ष १ / किरण ५ / चैत्र, वीर नि.सं. २४५६ / पृ. ३०३

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पं० हीरालाल हंसराज जी जामनगरवालों की ओर से प्राप्त हुए उत्तरपत्र से मालूम हुआ कि हिमवन्तसूरि-कृत मूल थेरावली भी अब भाषान्तर-सहित छप रही है। इससे उसके शीघ्र प्रकट हो जाने की आशा है। साथ ही, श्वेताम्बर-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पं० सुखलाल जी से, जो इस समय आश्रम में तशरीफ रखते हैं, मालूम हुआ कि उन्होंने सन्देह होने पर थेरावली के अनुवाद उक्त पं० हीरालाल हंसराज जी से ग्रंथ की मूल प्राचीन प्रति की बाबत दर्याफ्त किया था और यह भी पूछा था कि अनुवाद के साथ में कुछ गाथाएँ देकर जो व्याख्या की गई है, वह व्याख्या उनकी निजी है या किसी टीका का अनुवाद है? उत्तर में उनके यह लिखने पर कि वह व्याख्या टीका का ही अनुवाद है और मूल प्रति कच्छ के अंचलगच्छीय धर्मसागर जी के भण्डार में मौजूद है, जो नागौर या बीकानेर से वहाँ पहुँची है, उस भंडार से इसकी प्राप्ति के लिये कोशिश की गई। परन्तु अनेक मार्गों से छह सात महीने तक बराबर प्रयत्न करने पर भी वह मूल प्रति अभी तक देखने को नहीं मिल सकी और न यही मालूम हो सका कि वह प्रति वहाँ मौजूद भी है या कि नहीं। अन्यत्र भी तलाश जारी है। ऐसी हालत में जब तक मूल प्रति देखने को न मिल जाय और उस पर से ग्रंथ के असली होने का निश्चय न हो जाय, तब तक उसके प्रकाशित होने पर भी उस पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता, ऐसी उनकी तथा पं० बेचरदास जी और जिनविजय जी की राय है। और यह ठीक ही है। सत्य के निर्णायार्थ मूल प्रति के दिखलाने में किसी को भी संकोच न होना चाहिये। तद्विषयक सन्देह को दूर करना उसके प्रकाशकों का पहला कर्त्तव्य हैं।''

६.५. तृतीय लेख

(**ज्ञातव्य**-इस लेख में दी गयीं पादटिप्पणियाँ इसी लेख के लेखक की तथा कतिपय 'अनेकान्त' के सम्पादक पं० जुगलकिशोर मुख्तार की हैं। पादटिप्पणी के अन्त में 'लेखक' और 'सम्पादक' शब्द से इसका संकेत कर दिया गया है।)

राजा खारवेल और हिमवन्त-थेरावली[१२१]

लेखक : मुनि श्री० कल्याणविजय जी

''**अनेकान्त** की ४थी किरण में '**राजा खारवेल और उसका वंश**' इस हैडिंग से हमारा एक लेख छपा है, जो कलिंग चक्रवर्ती महाराज खारवेल के जीवनवृत्तान्त से संबद्ध है। इस लेख का आधार 'हिमवन्त थेरावली' का गुजराती अनुवाद है, यह बात हमने उसी लेख के अन्त में फुटनोट देकर स्पष्ट कर दी है।

१२१. 'अनेकान्त' वर्ष १/ किरण ६-७ / वैशाख-ज्येष्ठ, वीर नि० सं० २४५६ / पृ. ३४२-३५०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"इस विषय के अन्वेषक कतिपय विद्वानों के पत्रों से हमें ज्ञात हुआ कि उनको यह लेख बहुत ही पसन्द आया है। पर यह दुःख की बात है कि बा० कामताप्रसाद जी जैन को इस लेख से कुछ आघात पहुँचा मालूम होता है, जिस के परिणाम-स्वरूप आपने 'अनेकान्त' की ५ वीं किरण में इसके खण्डन में इसी शीर्षक से एक आक्षेपक लेख प्रकाशित कराया है।

"लेख के प्रारम्भ में 'हिमवन्त थेरावली' को जाली ठहराने की धुन में आपने श्वेताम्बर जैन समाज पर जो आक्षेप किये हैं, उनका उत्तर देना इस लेख का विषय नहीं है, पर लेखक महाशय इतना समझ रक्खें कि जो दोषारोपण आप श्वेताम्बरसमाज पर करने जा रहे हैं, उससे कहीं अधिक दोषारोपण दिगम्बरसमाज पर भी हो सकता है, पर इस दोषदृष्टि में लाभ ही क्या है? इन दोषग्राहक-वृत्तियों से हमने हमारे समाज का जितना नुकसान किया है उतना शायद हमारे विरोधियों ने भी नहीं किया होगा। क्या ही अच्छा हो, यदि अब भी हम हमारे समानधर्मियों के ऊपर कीचड़ फैंकने के स्थान पर उनके साथ सहकार करना सीखें।

"लेखक की शिकायत यह है कि 'हिमवन्त थेरावली' की प्रामाणिकता और प्राचीनता की चर्चा किये बगैर उसमें लिखी हुई किसी भी हकीकत का प्रकाशित करना ठीक नहीं जँचता। क्या यह दलील है? भला जो कुछ ऐतिहासिक नई सामग्री उपलब्ध हो, उसको सत्य प्रमाणित किये बगैर विचारार्थ उपस्थित न किया जाय, तो उस पर ठीक विचार ही कैसे हो सकता है? खारवेल के हाथीगुफा के लेख का ही उदाहरण लीजिए, उसको अनेक विद्वानों ने पढ़ा और अपनी-अपनी समझ के अनुसार एक दूसरे की विचारधारा को बदल कर अपनी सम्मतियाँ कायम कीं। यही क्यों, एक-एक विद्वान् ने प्रत्येक बार अपने विचारों को किस प्रकार बदला और नये परिष्कार किये, यह बात कहने की शायद ही जरूरत होगी।

"दूसरी बात यह है कि हमारा उक्त लेख 'हिमवन्त-थेरावली'-विषयक मौलिक लेख नहीं था कि उसमें हम अपना कुछ भी अभिप्राय देते, 'वीर संवत् और जैन कालगणना' नामक हमारा निबन्ध जो 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में अभी छपा है, उस के पीछे इस थेरावली का सारांश परिशिष्ट के तौर पर दिया है, उसका यह एक अंश मात्र था, मूल लेख के साथ जो कुछ लिखना उचित था, वह हमने लिख भी दिया है, पर लेख के प्रत्येक अंश अथवा प्रकरण के साथ लेखक अपना अभिप्राय कैसे दे सकता है? यदि बा० कामताप्रसाद जी हमारे उस लेख के अन्त में दिये हुए फुटनोट को देख लेते, तो यह आक्षेप करने का उन्हें शायद मौका ही नहीं मिलता। 'थेरावली किस आचार्य ने किस जमाने में लिखी' इस बात पर ऊहापोह तभी हो

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सकता है कि जब वह मूल थेरावली उपलब्ध हो गई हो। केवल उसके भाषान्तर के आधार पर यह चर्चा किस प्रकार निर्दोषरीत्या चल सकती है? पर लेखक महोदय जरा धैर्य रक्खें, इन सब पहलुओं पर विचार हो जायगा, क्योंकि अब मूल स्थविरावली भी हमारे हस्तगत हो गई है।

"अब हम कामताप्रसाद जी की उन दलीलों की क्रमशः समालोचना करेंगे, जो उन्होंने 'हिमवन्त-थेरावली' की खारवेल-विषयक बातों को अप्रामाणिक और बाधित सिद्ध करने के लिये अपनी तरफ से उपस्थित की हैं।

"१. आपका यह कथन ठीक है कि 'चेटक के वंश का जो परिचय थेरावली में दिया है वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता', पर इससे यह कैसे मान लिया जाय कि कोई भी बात एक से अधिक ग्रन्थों में न मिलने से ही अप्रामाणिक या जाली है? दिगम्बर-संप्रदाय के मान्य ग्रन्थ मूलाचार अथवा भगवती-आराधना का ही उदाहरण लीजिये, इन दोनों ग्रंथों में ऐसी अनेक बातें हैं, जो दूसरे किसी भी दिगम्बराचार्यकृत ग्रन्थ में नहीं मिलतीं। क्या हम पूछ सकते हैं कि इन दोनों ग्रन्थों को अप्रामाणिक अथवा जाली ठहराने का बाबूसाहब ने कभी साहस किया है? यदि नहीं, तो फिर क्या कारण है कि किसी बात का ग्रन्थान्तर से समर्थन न होने की वजह से आप 'हिमवंत-थेरावली' को अप्रामाणिक ठहराने के लिये दौड़ पड़े हैं?

"२. लेखक का यह कथन कि "जो अंश प्रकट हुआ है उसका सामञ्जस्य केवल जैनशास्त्रों से ही ठीक नहीं बैठता, बल्कि जैनेतर साहित्य से भी वह बाधित है, जैसा कि आगे चलकर प्रकट होगा" कुछ भी सत्यता नहीं रखता। थेरावलीवाली हकीकत का जैनशास्त्रों से कुछ भी असामञ्जस्य सिद्ध नहीं होता और न जैनेतर साहित्य से ही वह बाधित है, जैसा कि आगे चलकर बताया जायगा।

"हिमवंत-थेरावली में केवल खारवेल और उसके वंश का ही उल्लेख नहीं है,बल्कि उस में श्रेणिक, कूणिक, उदायी, नन्द और मौर्यवंश के राज्य की कतिपय ज्ञातव्य बातों का भी स्फोट किया गया है, और सम्प्रति के समय में किस प्रकार मौर्य राज्य की दो शाखाएँ हुईं तथा सम्प्रति के बाद विक्रमादित्य पर्यन्त कौन कौन उज्जयिनी में राजा हुए, इन सब बातों का संक्षिप्त निर्देश इस थेरावली में किया गया है।

"३. लेखक की तीसरी दलील यह है कि "राजा चेटक के नाम की अपेक्षा किसी 'चेट' वंश का अस्तित्व इस से पहले के किसी साहित्यग्रन्थ या शिलालेख से प्रगट नहीं है। और चेटक का वंश 'लिच्छिवि' प्रसिद्ध था।"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"यह ठीक है कि चेटक के नाम से किसी वंश का अस्तित्व कहीं उल्लिखित नहीं देखा गया, पर इस खारवेल के लेख और थेरावली के संवाद से यह मानने में क्या आपत्ति है कि इस उल्लेख से ही चेटकवंश का अस्तित्व सिद्ध हो रहा है? चेटक की युद्ध-निमित्तक मृत्यु हुई, उसकी राजधानी वैशाली का नाश हुआ और चेटक के वंशजों का अधिकार विदेह राज्य पर से उठ जाने के बाद वहाँ गणराज्य हो गया। इन कारणों से पिछले समय में चेटक और उसके वंश की अधिक प्रसिद्धि न रहने से उस की चर्चा ग्रन्थों में न मिलती हो, तो इससे सशंक होने की क्या जरूरत है? चेटक बड़ा धर्मी राजा था, उसने शरणागत की रक्षा के निमित्त ही मगधपति कोणिक के साथ लड़ाई लड़ी थी और अन्त तक अपनी टेक रखते हुए उसने अपना वीरोचित समाधिमरण किया था। इस दशा में चेटक की कीर्ति और उसका महत्त्व उसके पुत्र शोभनराज की संतान के लिये एक गौरव का विषय हो, इसमें क्या अनुचित है? शोभनराज भाग निकला और उसने अपनी हीनता साबित की, यह मान लेने पर भी चेटक की महत्ता में कुछ भी हीनत्व नहीं आता। अगर खारवेल सचमुच ही इस कीर्तिशाली चेटक का वंशज हो, तो वह बड़े गौरव के साथ अपने पूर्वज का नाम ले सकता है।

"इस कथन में भी कुछ प्रमाण नहीं है कि चेटक 'लिच्छिवि' वंश का पुरुष था। मुझे ठीक स्मरण तो नहीं है, पर जहाँ तक ख्याल है, श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के पुराने साहित्य में चेटक का 'हैहय' अथवा इससे मिलता-जुलता कोई वंश बताया गया है।[१२२] पर 'लिच्छिवि' वंश तो किसी जगह नहीं लिखा। हाँ, उस के समय में वहाँ 'लिच्छिवि' लोगों की एक शक्तिशाली जाति थी, उसके कई जत्थे थे और प्रत्येक जत्थे पर एक एक जत्थेदार-गणनायक नियत था। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वे जत्थेदार अथवा गणनायक बिलकुल स्वतंत्र थे। सिर्फ अपने गणों के आन्तरिक कार्यों में ही उनकी स्वतंत्रता परिमित थी। राज्य-कारोबार में वे सब चेटक के मातहत थे, दुर्दैवयोग से कोणिक के साथ की आखिरी लड़ाई के समय विदेह की 'लिच्छिवि' और 'वज्जी' नामक दो प्रबल जातियों में से दूसरी जाति ने चेटक को धोखा दे दिया, वह कोणिक के साथ मिल गई और काशी तथा कोसल के १८ गण-राजों के साथ चेटक की हार हो गई।[१२३] इस अपमान के मारे उसने अनशन करके देह छोड़ दिया।

---

१२२. "जहाँ तक मुझे याद है, यह बात 'निरयावली' सूत्र में है। इस फिकरे को मैंने नोट तक किया है, लेकिन इस वक्त न तो मेरे पास 'निरयावली' सूत्र है और न उसका नोट ही।" लेखक।

१२३. "चेटक और कोणिक की यह लड़ाई जैनसूत्रों में 'महाशिला-कण्टक' इस नाम से वर्णित है। इस लड़ाई में किसकी जीत हुई और किसकी हार? यह प्रश्न करके उत्तर

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"इस प्रसंग में काशी के ९ गणराज और कोसल के ९ गणराज जो मल्ल और लिच्छिवि जाति की भिन्न-भिन्न श्रेणियों के अगुआ थे, उनके चेटक की मदद में लड़ने का उल्लेख[१२४] है, पर विदेह के किसी भी गणराज का जिक्र नहीं मिलता। इससे भी यह साबित होता है कि तब तक विदेह में गणराज्य स्थापित नहीं हुआ था। हाँ, अपनी श्रेणियों में वंशपरम्परागत एक-एक नायक अवश्य माना जाता था, उन श्रेणिपतियों पर राजा चेटक का शासन था और सब कामों में वह महाराजा की हैसियत से उन पर हुक्म करता था। यद्यपि काशी और कोशल के राज्य भी उस समय विदेह राज्य में सम्मिलित थे, पर वहाँ की आन्तरिक शासन-व्यवस्था में विदेहराज का हस्तक्षेप नहीं था। अपने राज्यकारोबार में वहाँ के गणराज्य स्वतंत्र थे। हाँ, युद्ध जैसे प्रसंगों में वे एक दूसरे की मदद के लिए खास नियमों से बँधे रहते थे, और इसी वजह से उनने कोणिक के आक्रमण के समय चेटक का साथ दिया था।

"चेटक विदेह का परम्परागत राजा था, इस बात का यद्यपि स्पष्ट उल्लेख हमारे देखने में नहीं आया, पर इस से यह भी निश्चित कैसे मान लिया जाय कि वह परम्परागत राजा नहीं था?, और यह भी कौनसा नियम है कि परम्परागत राजा हो, वही राजा माना जाय और दूसरा नहीं? लेखक महाशय जो यह कहते हैं कि "चेटक परम्परागत राजा नहीं था, यह बात इतिहास और स्वयं श्वेताम्बरग्रंथों से सिद्ध है" बिलकुल निराधार है। तर्कमात्र से कुछ कल्पना कर लेना यह इतिहास नहीं कहा जा सकता। क्या लेखक यह बताने की तकलीफ उठाएँगे कि चेटक के परम्परागत राजा न होने की बात किस श्वेताम्बरग्रन्थ में लिखी है? अथवा क्या यह भी किसी प्राचीन ग्रन्थ से बता सकते हैं कि चेटक वैशाली के नियुक्त राष्ट्रपति थे? इस बात को लेखक जी ध्यान में रक्खें कि किसी आधुनिक विद्वान् के कह देने मात्र से चेटक वैशाली के अथवा लिच्छविवंश के नियुक्त राष्ट्रपति सिद्ध नहीं हो सकते। विदेह देश

दिया गया है कि इसमें 'वज्जी' और 'वैदेहीपुत्र' (कोणिक) की जीत हुई और नौ मल्लक और नौ लिच्छवि गणराजों की हार हुई। देखिये निम्नलिखित भगवतीसूत्र के शब्द—"**महाशिलाकंटए णं भंते संगामे वट्टमाणे के जइत्था के पराजइत्था? गोयमा! वज्जी-विदेहपुत्ते जइत्था नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस विगणरायाणो पराजइत्था।**" (भ./श.७/उ.९/प. ३१५)। यहाँ टीका में 'वज्जी' शब्द का अर्थ 'वज्री' अर्थात् इन्द्र किया है, पर वस्तुतः यहाँ 'वज्जी' शब्द 'वृजिकजाति' का प्रबोधक है।" लेखक।

१२४. "इस प्रंसग पर बाबू कामताप्रसाद जी ने अपने लेख में नौ मल्लिक, नौ लिच्छवि गणराजों के अतिरिक्त ४८ काशी-कौशल के गणराजों का जो उल्लेख किया है, वह बिलकुल गलत है। काशी-कौशल के नौ मल्लिक और नौ लिच्छवि गणराजों ने चेटक को इस युद्ध में साहाय्य प्रदान किया था, दूसरे किसी ने नहीं।" लेखक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में गणराज्य की चर्चा थी, इसी आधार पर चेटक को वहाँ का गणराज अथवा नियुक्त राष्ट्रपति मान लेना एक बात है और उसके सम्बन्ध में उस बात को साबित करनेवाले प्रमाण देना दूसरी बात है। आज तक जो-जो बातें चेटक के सम्बन्ध में हमने सोची हैं, उन सब से तो यही सिद्ध होता है कि चेटक विदेह का सत्ताधारी राजा था। उज्जयिनी के चण्डप्रद्योत, सिन्धु-सौवीर के उदायन, वत्स-कौशाम्बी के शतानीक और मगधपति श्रेणिक जैसे स्वतंत्र सत्ताशाली राजाओं से उसका वैवाहिक सम्बन्ध भी यही बता रहा है कि चेटक एक सत्ताशाली राजा था।

"लड़ाई के समय 'वज्जी' जाति का उसके विरुद्ध कोणिक के पक्ष में मिल जाना भी यही बताता है कि आस-पास के राष्ट्रों की स्वतंत्रता से प्रभावित होकर ही वज्जियन लोगों ने भी चेटक को राज्यधुरा से वंचित करने के लिये मगधपति का पक्ष लिया होगा। इन सब बातों के पर्यालोचन से तो यही प्रमाणित होता है कि चेटक एक स्वतंत्र-सत्तावान् राजा था।[१२५] इस हालत में कोणिक के साथ की लड़ाई में उसके पराजित होने पर उसका पुत्र शोभनराज कलिंग के राजा सुलोचन के पास गया हो और वहाँ उसको राज्य मिला हो, तो क्या आश्चर्य है?

"४. चौथी दलील का सम्पूर्ण उत्तर ऊपर के विवेचन से दिया जा चुका है।

"५. पाँचवीं दलील यह है कि दिगम्बर-जैनशास्त्र 'उत्तरपुराण' में राजा चेटक के दस पुत्रों के जो नाम लिखे हैं, उनमें 'शोभनराज' नाम नहीं है। ठीक है, उत्तरपुराण में 'शोभनराय' नाम न सही, पर उत्तरपुराण कौनसा प्रामाणिक इतिहासग्रन्थ है कि जिसकी प्रत्येक बात पर हम अधिक वजन दे सकें। जो पुराण उदायन को कच्छ देश का

---

१२५. "बाबू कामताप्रसाद जी स्वयं भी इस विषय में पहिले संशयात्मा थे कि वैशाली में गणराज्य था या राजराज्य? इस बात का कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता। देखिये इनकी 'भगवान् महावीर' नामक पुस्तक का निम्न लिखित फिकरा—"उस समय के अन्य प्रभावशाली राज्य मगधादि से अपने को सुरक्षित रखने के लिए बहुत संभव है कि इन राज्यों ने इस प्रकार एक गणराज्य कायम कर लिया हो। किन्तु इस विषय में कोई निश्चयात्मक निर्णय नहीं दिया जा सकता है, जब तक कि उस जमाने के और हाल मालूम न हो जावें। अत एव महाराज चेटक और नृप सिद्धार्थ किसी न किसी रूप में क्रम से वैशाली और कुण्डलपुर के अधिपति थे, जैसा कि जैनशास्त्र प्रगट करते हैं।" (भगवान् महावीर / पृ. ६४)। परन्तु अब आप इस लेख में निश्चय के साथ लिखते हैं कि "विदेह देश में तब साम्राज्यवाद के स्थान पर एक प्रकार का प्रजातंत्रवाद प्रचलित था। चेटक उस राष्ट्र के राष्ट्रपति नियुक्त थे।" क्या मैं पूछूँ कि बाबू साहब को अब कौन नये प्रमाण मिले हैं, जिनके आधार पर आपने यह निश्चयात्मक निर्णय कर लिया कि 'चेटक नियुक्त राष्ट्रपति थे'?" लेखक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

राजा बता सकता है और कौशाम्बी के राजा शतानीक को 'सार' नाम से वर्णन कर सकता है, उसके वचन पर कहाँ तक विश्वास किया जाय, इसका लेखक स्वयं विचार कर लें। कौशाम्बी के राजा सहस्रानीक के पुत्र का नाम श्वेताम्बर-जैनसूत्रों और भास के स्वप्नवासवदत्त में शतानीक लिखा मिलता है, तब दिगम्बराचार्यकृत श्रेणिकचरित्र में इसका नाम 'नाथ' और उत्तरपुराण में 'सार' लिखा है। इस पर बाबू कामताप्रसाद जी अपनी 'भगवान् महावीर' नामक पुस्तक (पृ.१४०) में लिखते हैं कि 'शतानीक' यह इस राजा का तीसरा नाम है। भला शतानीक के 'नाथ' और 'सार' जैसे अव्यवहार्य नामों का तो नामान्तर मान कर निर्वाह कर लेना और 'शोभनराय' नाम उत्तरपुराण में न होने मात्र से ही उसे अप्रामाणिक ठहरा देना यह कैसा न्याय है? यहाँ पर भी यही क्यों न मान लिया जाय कि यदि चेटक के उत्तरपुराणोक्त दस ही पुत्र थे, तो 'शोभनराज' यह भी उनमें से किसी एक का नामान्तर हो सकता है।

"६. यह कहना कि 'हरिवंशपुराण के अनुसार महावीर के समय में कलिंग का राजा जितशत्रु था, सुलोचन नहीं था', केवल तर्काभास है। क्योंकि 'जितशत्रु' यह कोई विशेष नाम नहीं है, किन्तु राजा का सम्माननीय विशेषण-मात्र है। क्या श्वेताम्बर, क्या दिगम्बर किसी भी संप्रदाय के ग्रन्थों में जहाँ-जहाँ राजा का नाम 'जितशत्रु' और रानी का नाम 'धारिणी' आता है वहाँ सर्वत्र बहुधा यही अर्थ समझना चाहिये।[१२६] इस दशा में कलिंग के राजा का नाम सुलोचन मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

"७. लेखक की सातवीं दलील तो सभी दलीलों का मक्खन है। आप कहते हैं "**क्या यह संभव नहीं है कि खारवेल के अति प्राचीन शिलालेख को श्वेताम्बर-साहित्य से पोषण दिला कर उसे श्वेताम्बरीय प्रकट करने के लिये ही किसी ने इस थेरावली की रचना कर डाली हो और वही रचना किसी शास्त्रभण्डार से उक्त मुनि जी को मिल गई हो?**"

"प्रिय पाठक गण! कितना गहन तर्क है? इससे आप लेखक महाशय का मनोभाव तो बखूबी समझ ही गये होंगे कि इस विषय में उनके कलम उठाने का कारण क्या है? जहाँ तक मैं समझता हूँ बाबू कामताप्रसाद जी अपने सम्प्रदाय के अनन्य रक्षक जान पड़ते हैं, अपनी कट्टर सांप्रदायिकता के विरुद्ध कुछ भी आवाज निकलते ही उसकी किसी भी तरह धज्जियाँ उड़ाना आपका सर्वप्रथम कर्तव्य है, यही कारण है कि हिमवन्त-थेरावली को बगैर देखे और बगैर सुने ही उसको जाली ठहराने की हद तक आप पहुँच गये और जो कुछ मन में आया लिख बैठे। अस्तु।

---

१२६. "अच्छा होता यदि लेखक महाशय इस विषय के समर्थन में कोई सबल प्रमाण भी साथ में उपस्थित कर देते।" सम्पादक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"बाबू जी! आप इतना भी नहीं सोच सकते कि **यदि थेरावली वस्तुतः जाली होती और उसका मनशा आपके कथनानुसार होता, तो उसमें कुमारगिरि पर जिनकल्पि-दिगम्बर साधुओं के होने का उल्लेख ही क्यों होता?** खारवेल के लेख को श्वेताम्बरीय प्रकट करने का और कुमार तथा कुमारीगिरि पर अपना स्वत्व साबित करने के इरादे से यदि थेरावली का निर्माण हुआ होता, तो उसमें यह जिक्र क्या कभी आता कि कुमारीगिरि की गुफाओं में जिनकल्पी साधु रहते थे और कुमारगिरि पर स्थविरकल्पी? **इसके अतिरिक्त खारवेल ने जो चतुर्विध संघ को इकट्ठा किया था, उसमें भी दो सौ जिनकल्प की तुलना करनेवाले साधुओं के एकत्र होने का जो निर्देश है, वह कभी होता?**

"यह आपत्ति कि "थेरावली में कतिपय उल्लेख ऐसे हैं, जो खारवेल के लेख में पहले अन्य रूप में पढ़े गये थे और अब वे नये रूप में पढ़े जाते हैं, उदाहरण के तौर पर 'खारवेल' यह नाम पहिले उपाधि मानी गई थी, परन्तु अब वह विशेष नाम साबित हुआ है। इसी प्रकार पहले 'बृहस्पतिमित्र' पुष्यमित्र का ही नामान्तर माना गया था, पर अब वैसे नहीं माना जाता।" परन्तु यह आपत्ति भी वास्तविक नहीं है, क्योंकि अभी तक खारवेल का वह लेख पूरे तौर से स्पष्ट पढ़ा नहीं गया है, प्रत्येक बार विद्वानों ने उसमें से जो जो विशेष बात समझ पाई, वही लिख डाली है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि अब इस लेख में कुछ भी संशोधन होगा ही नहीं, क्या आश्चर्य है कि प्रथम वाचना की जिन-जिन बातों को विद्वानों ने पिछले समय में बदला है उन्हीं को वे कालान्तर में फिर मंजूर भी कर लेवें?

"दृष्टिवाद को दुर्भिक्ष के बाद व्यवस्थित करने का जिक्र इस लेख में और थेरावली में ही नहीं, किन्तु दूसरे भी अनेक प्रामाणिक श्वेताम्बर-जैनग्रन्थों में आता है।[१२७] इस वास्ते इस विषय का लेखक का अभिप्राय भी दोषरहित नहीं है।

"८. कुमारगिरि पर जिनमंदिर का पुनरुद्धार करके सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध के हाथ से प्रतिष्ठा कराकर जिनमूर्ति स्थापित करने के सम्बम्ध में आप कहते हैं कि—

---

१२७. "नन्द और मौर्यकालीन दुर्भिक्षों का वर्णन और उस समय अव्यवस्थित हुए दृष्टिवाद की फिर व्यवस्था करने का विस्तृत वर्णन 'तित्थोगाली पइन्नय', 'आवश्यकचूर्णि' प्रभृति प्राचीनकालीन श्वेताम्बरग्रंथों में दिया हुआ है, और उसके बाद के दुर्भिक्षों में भी दृष्टिवाद की छिन्नभिन्नता और क्रमशः उसके विच्छेद होने के उल्लेख श्वेताम्बर-पट्टावलियों में मिलते हैं। इस वास्ते खारवेल के समय में दृष्टिवाद का संग्रह करने के विषय में जो हिमंवत-थेरावली में उल्लेख किया गया है, वह असंगत मालूम नहीं होता।" लेखक।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"वीर निर्वाण से ३३० वर्षों के बाद ये सब कार्य करके खारवेल को स्वर्गवासी हुआ लिखा है। किन्तु श्वेताम्बरीय तपागच्छ की 'वृद्धपट्टावली' से यह बात बाधित है। उसके अनुसार उक्त स्थविरद्वय का समय वीर निर्वाण से ३७२ वर्ष का है। इस हालत में खारवेल का उनसे साक्षात् होना कठिन है।"

"खारवेल वीरसंवत् ३३० में स्वर्गवासी हुआ, यह बात तो ठीक है, पर 'सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध निर्वाण से ३७२ वर्ष के बाद हुए' यह लिखना गलत है। सभी श्वेताम्बरगच्छीय पट्टावलियों में आर्य सुहस्ति का स्वर्गवास निर्वाण से २९१ वर्ष के बाद होना लिखा है, इस दशा में आर्य सुहस्ति के पट्टधर सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध की विद्यमानता ३३० के पहिले मानने में कुछ भी विरोध नहीं है। इन स्थविरों का ३७२ के बाद होने का लेख भ्रमपूर्ण है। अगर ऐसा तपागच्छ की पट्टावली में उल्लेख है, तो वह अशुद्ध है, इसमें कोई शक नहीं है। मालूम होता है ३२७ के स्थान में भूल से ३७२ छप गया है, क्योंकि इन दोनों स्थविरों का स्वर्गवास निर्वाण से ३२७ वर्ष के बाद हुआ था और इन के नाम के लेखोंवाले वहाँ पर दो स्तूप भी भिक्षुराज खारवेल ने बनवाये थे, ऐसा अञ्चलगच्छ की मेरुतुंगकृत पट्टावली में उल्लेख है। साथ ही, वहाँ यह भी लिखा है कि 'आर्य सुस्थित-सुप्रतिबद्ध अधिकतर कलिंग देश में ही विहार करते थे। परमार्हत भिक्षुराज इनका परमभक्त बना हुआ था, और इन स्थविरयुगल के उपदेश से उसने अनेक शासनोन्नति करनेवाले धर्मकार्य किये थे। कलिंगदेश में 'शत्रुंजयावतार' नाम से प्रसिद्ध कुमरपर्वत पर इन्होंने कोटिवार सूरिमंत्र का आराधन किया था, अतएव इनका मुनिगण 'कोटिकशाखा' इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था। इन दोनों ने अपना साधुसमुदाय इंद्रदिन्नसूरि को समर्पण करके कुमरगिरि पर अनशन कर वीर निर्वाण से ३२७ वर्ष बीतने पर स्वर्गवास प्राप्त किया।[१२८]

---

१२८. "जिसका सारांश ऊपर दिया गया है वह अञ्चलगच्छ की पट्टावली का मूल पाठ इस प्रकार है—"चम्पापुरीवास्तव्यौ सुस्थित-सुप्रतिबुद्धाभिधानौ द्वावपि राजन्यकुलसमुद्भवौ भ्रातरौ प्राप्तसंवेगौ श्रीमदार्यसुहस्तिनां समीपे व्रतं जगृहतुः। प्रायेण कलिङ्गदेशे विहारं कुर्वतोस्तयोस्तत्रत्यः परमार्हतभिक्षुराजभूपोऽतीव भक्तः सञ्जातः। तयोरुपदेशेन तेन भिक्षुराज-भूपेनानेके (कानि) धर्मकार्याणि शासनोन्नतये कारितानि। ताभ्यां च तत्र कलिङ्गदेशे शत्रुञ्जयावतारापरनामप्रसिद्धकुमरपर्वतोपरिध्यानस्थाभ्यां कोटिवारं सूरिमन्त्राराधनं कृतम्। अतस्तदीयपरिवारमुनिगणः 'कोटिकशाखा'- भिधानतः प्रसिद्धो बभूव। तौ द्वावपि भ्रातरौ निजपरिवारं श्रीमदिन्द्रदिन्नसूरिभ्यः समर्प्य कुमरगिरावनशनं विधाय श्रीवीरप्रभुनिर्वाणत् ३२७ वर्षेषु व्यतिक्रान्तेषु स्वर्गं जग्मतुः। भिक्षुराजभूपेन च तत्रोत्सवं निर्माय तदभिधानलेखयुतौ द्वौ स्तूपौ कारितौ।" मेरुतुङ्गीयाञ्चलगच्छीय-पट्टावली।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"अञ्चलगछ की पट्टावली के इस उल्लेख से न केवल खारवेल और इन दो स्थविरों की समकालकता ही सिद्ध है, बल्कि इससे हिमवंत-थेरावली की भी कतिपय बातों का समर्थन होता है।

"९. इस फिकरे में लेखक का कहना है कि "एक तो देवाचार्य, बुद्धिलिंगाचार्य, धर्मसेनाचार्य तथा नक्षत्राचार्य श्वेताम्बर नहीं थे, दूसरे ये नितान्त एक-दूसरे से भिन्नकालीन होने से खारवेल की सभा में इनका एकत्र होना असंभव है।" यह ठीक है कि इन आचार्यों का श्वेताम्बरजैनों की विद्यमान पट्टावलियों में वर्णन नहीं है, परन्तु हिमवंत-थेरावलीकार ने भी यह तो लिखा ही नहीं है कि ये स्थविर श्वेताम्बर-संप्रदायानुयायी थे। थेरावलीकार ने तो स्पष्ट लिख दिया है कि **ये आचार्य जिनकल्प की तुलना करने वाले थे, आर्य महागिरि की शाखा के स्थविर थे, जो स्वयं भी जिनकल्प की तुलना करते थे। यदि ये नाम दिगम्बर-पट्टावलियों में मिलते हैं, तो इसमें आपत्ति की बात ही क्या है?** इस से तो उलटा थेरावली के लेख का ही समर्थन होता है। अब रही इनके नितान्त भिन्नकालीन होने की बात, सो यह भी आपत्ति वास्तविक नहीं जान पड़ती, दिगम्बरीय ग्रन्थों के अनुसार देवाचार्य निर्वाण से ३१५ वर्ष पीछे दशपूर्वधर बने थे, तो इस समय के पहले भी वे विद्यमान थे, इसमें तो शंका ही क्या है? बुद्धिलिंग का दशपूर्वधरत्व-काल निर्वाण से २९५ से ३१५ वर्ष तक लिखा है, धर्म-सेनाचार्य का समय नि० सं० ३२९ लेखक स्वयं कबूल करते है, नक्षत्राचार्य ३४५ में एकादशांगधारी हुए माने जाते हैं। तो इसके पहले इनकी विद्यमानता स्वयं सिद्ध है। इस दशा में खारवेल द्वारा एकत्र की गई सभा में इन आचार्यों का सम्मिलित होना कुछ भी असंभावित अथवा अशक्य नहीं है। इस विषय में विद्वान् सम्पादक जी ने भी फुटनोट में अच्छा खुलासा कर दिया है, जो विद्वानों के पढ़ने योग्य है। इसी फिकरे में लेखक महाशय लिखते हैं कि "इन आचार्यों को थेरावली भी दिगम्बर (जिनकल्पी) प्रकट करती है। रही बात सवस्त्र साधुओं की, सो थेरावली में ये सुस्थित, सुप्रतिबुद्ध, उमास्वाति व श्यामाचार्य प्रभृति बताए हैं। इनमें से पहले दो इस सभा में शामिल नहीं हो सकते, यह हम देख चुके। रहे शेष दो, सो ये भी उक्त सभा में नहीं पहुँच सकते, क्योंकि उमास्वाति इस घटना के कई शताब्दी बाद हुए हैं और श्यामाचार्य उनसे भी पीछे के आचार्य मालूम होते हैं। अतः थेरावली का यह वक्तव्य प्रामाणिक नहीं है।"

"थेरावली इन देवाचार्य प्रभृति को जिनकल्पी प्रकट करती है, यही तो इसकी प्राचीनता का द्योतक है। यदि वह अर्वाचीन काल की रचना होती, तो दूसरी श्वेताम्बरीय पट्टावलियों की तरह इसमें भी देवाचार्य, बोधिलिंग, धर्मसेन प्रमुख आचार्यों का उल्लेख नहीं होता।

''सुस्थित-सुप्रतिबुद्धि का समय निर्वाण से २९१ से ३२७ पर्यन्त था, इस वास्ते इनका खारवेल द्वारा प्रस्तुत सभा में शामिल होना किसी तरह असंगत नहीं है, यह बात पहिले कही जा चुकी है। उमास्वाति और श्यामाचार्य में से श्यामाचार्य तो खारवेल के समकालीन थे, इसमें कुछ भी शंका नहीं है, क्योंकि श्वेताम्बरजैन-पट्टावलियों में श्यामाचार्य के युगप्रधानत्वकाल का प्रारंभ नि० सं० ३३५ से माना गया है और जिस समय उन्हें युगप्रधान का पद मिला, उस समय उनको दीक्षा लिए ३५ वर्ष हो चुके थे। इस वास्ते श्यामाचार्य के खारवेल की सभा में शामिल होने में कोई विरोध नहीं है। अब रही उमास्वाति की बात, सो यह बात अवश्य विचारणीय है। यद्यपि इनके सत्तासमय के सम्बन्ध में श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थकार एकमत नहीं हैं, दिगम्बर-संप्रदाय के विद्वान् इनको कुन्दकुन्दाचार्य के बाद में हुआ मानते हैं, तब श्वेताम्बर-संप्रदाय की पट्टावलियाँ इनको उपर्युक्त श्यामाचार्य के गुरु अथवा पुरोगामी और बलिस्सह के शिष्य 'स्वाति' आचार्य से अभिन्न मानती हैं। नन्दी-थेरावली के **'हारिअगुत्तं साईं च वंदमौ हारिअं च सामज्जं'** इस गाथार्ध में बताये हुए स्वाति आचार्य ही यदि हिमवंत-थेरावली के उमास्वाति हैं, तब तो उनका खारवेल की सभा में शामिल होना कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है, पर इस सम्बन्ध में अभी कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता। श्वेताम्बरीय युगप्रधान-पट्टावलियों में एक और भी उमास्वाति वाचक वीर निर्वाण से १११५ के आस-पास के समय में हुए बतलाए हैं, आश्चर्य नहीं कि उमास्वाति नाम के आचार्य दो हुए हों और पिछले समय में इन दोनों का अभेद मान लेने से यह गड़बड़ उत्पन्न हो गई हो। कुछ भी हो, पर इससे हिमवन्त-थेरावली की अप्रामाणिकता कभी सिद्ध नहीं हो सकती।

''अपनी तमाम दलीलों की वृष्टि करने के बाद बाबू जी ने खारवेल के वंश के विषय में अपना अभिप्राय निश्चित किया है कि खारवेलसिरि 'ऐल' वंश का पुरुष था। इस निर्णय में खारवेल के हाथीगुफावाले लेख का 'ऐरेन' इस शब्द और जैन हरिवंश में दी हुई 'ऐलेय' राजा की कथा को आधारभूत माना है, पर यह कल्पना भी निर्मूल है, इसका स्पष्ट खुलासा अन्तिम फुटनोट में विद्वान् सम्पादक जी ने ही कर दिया है। इस सम्बन्ध में यहाँ सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्राचीन समय की पूर्वदेशीय भाषाओं में 'र' का 'ल' होने का विधान तो अवश्य था पर 'ल' का 'र' करनेवाला कोई विधान नहीं था, इस वास्ते 'ऐल' का स्थानापन्न 'ऐर' नहीं हो सकता। कोई-कोई विद्वान् 'ऐरेन' इस शब्द को 'वेरेन' इस प्रकार भी पढ़ते हैं जिसका संस्कृत रूप 'वज्रेण' होता है। क्या आश्चर्य है कि अन्य उपाधियों की तरह 'वज्र' यह भी खारवेल की कोई उपाधि हो? और यदि उड़िया दन्तकथा के अनुसार यहाँ 'ऐर' पाठ ही ठीक मान लिया जाय, तब भी उसको 'ऐलेय' का वंशज

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in